प्राप्ति-स्थान

चुन्नीलाल-मोमराज बोथरा
धुबरी (आसाम)

चुन्नीलाल-दुलीचंद बोथरा
गंगाशहर (राजस्थान)

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा,
गंगाशहर,
बीकानेर (राजस्थान)

साहित्य-निकेतन
४०६३, नया बाजार
दिल्ली

प्रथम संस्करण जनवरी १९६२
संशोधित-द्वितीय संस्करण
११०० प्रतियां अप्रैल १९६३
पृष्ठ ११२

मुद्रक
अशोककुमार गुप्ता
आदर्श मुद्रणालय
दाऊजी मन्दिर के निकट
बीकानेर (राजस्थान)

मूल्य ६० न पै.

प्रकाशकीय

श्रीजैनश्वेताम्बर-तेरापंथशासनमें सरसेका नौलखापरिवार-संभूत- साढे बारह वर्षके वयमें अष्टमाचार्य श्रीकालूगणी के वरदहस्तसे दीक्षित श्रीधनराजजीस्वामी एक असाधारणविद्वत्ताके अधिकारी हैं। बम्बई-पञ्जाब आदि प्रान्तोंमें विचरकर उन्होंने जो अभिज्ञता प्राप्त की, वह बेजोड़ है। आपकी आचारकुशलता सर्वजनविदित है। आपकी व्याख्यानशैली सरल, सुबोध्य एवं हृदयग्राही है। आप सरलभाषामें दार्शनिकतत्त्वको साधारण-जनके बोधगम्य बनानेकी क्षमता रखते हैं। संस्कृत, गुजराती, हिन्दी आदि भाषाओंमें आपने अनेक पुस्तके रचकरके जैनके गूढ़तत्त्वोंको समझानेका सफल-प्रयास किया है। आपके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके और अनेक अप्रकाशित भी हैं। वर्तमान जैन-जीवन ग्रन्थ पहले पञ्जाबसे प्रकाशित हुआ था। उसे देखनेका सौभाग्य मिला। उसमें जैनोंके ऐतिहासिक जीवनप्रसङ्ग हरएक समझ सके ऐसे ढगसे वर्णित हैं। जनताके लिए विशेष उपकारक लगनेसे आवश्यक सशोधनके साथ उक्त ग्रन्थका पुन. प्रकाशन किया जा रहा है। मै आशा करता हूँ कि पाठकगण इसे पढ़कर अपने जीवनको पवित्र एव उन्नत बनाकर मेरे प्रयासको सफल करेंगे, अस्तु !

भोमराज बोथरा

भूमिका

कोई व्यक्ति अपनी मुट्ठीमे रग लेकर कहता है कि मेरी मुट्ठी मे हाथी है, घोडा है, बिल्ली है, और बाघ है। इस कथनसे प्राय. सभी लोगोको आश्चर्य होगा, कि यह क्या पागलकी-सी बाते बना रहा है। लेकिन वही मनुष्य उस रग को पानीमे घोल कर, एक तूलिकासे कागजके ऊपर हाथीका आकार बनाकर पूछता है कि यह क्या है? तो तीन सालका बच्चा भी बोल देगा-'यह हाथी है' सज्जनो! चरित्र-चित्रण इसीका नाम है। द्रव्यानुयोग की गहरी बात भी उदाहरण, दृष्टान्त और युक्ति द्वारा सहसा गले उतर जाती है। इसी लिये तो अनुयोग-चतुष्टयमे धर्मकथानुयोगको स्थान मिला है।

नन्हे-नन्हे बालक भी अपनी दादी-माता को प्राय सोने के समय कहते ही रहते है कि हमे कोई कहानी सुनाओ! तब वृद्ध माताये सुनाती है और बच्चे बडी दिलचस्पीसे सुनते है। यथार्थ देखा जाय तो वे कहानियां बालकोका जीवन बनाती है, सूक्ष्म-संस्कार डालती है और उनका भविष्य तदनुरूप-संस्कारोंमे फलित होता है अत आख्यायिकाए बहुत उपयोगी मानी गई है।

आख्यायिकाएं दो प्रकारकी होती है-एक ऐतिहासिक

और दूसरी काल्पनिक। वैसे यथास्थान दोनों ही उपयोगी है, लेकिन विशिष्ट-ऐतिहासिक घटनाये तो वास्तवमे ही गहरी छाप डालती है और जीवनका नव-निर्माण करती है।

इस पुस्तकमे जो जैनजगतमे प्रसिद्ध, शिक्षाप्रद, सुरुचिर, वैराग्यसे ओतप्रोत एव नैतिक व धार्मिकजीवनको उद्बोधन करनेवाली आख्यायिकाओका श्रीधनराजजीस्वामी (जो एक कुशल कवि है और श्रीभिक्षुशासनमे सर्वप्रथम शतावधानी है) द्वारा अतिसरल भाषामे एवं संक्षिप्त-सकलन करनेका एक सुन्दर-प्रयास किया गया है।

विशेषता तो यह है कि महाभारत-जैसे कथासागरको आपने गागरमे ही भर दिया है। श्री महावीरकी जीवनकथा, प्रभु अरिष्टनेमीका उत्कृष्टत्याग, और गजसुकुमालका अडोल-धैर्य आदि-आदि अनेक उज्ज्वल-जीवनप्रसग इस पुस्तकने बड़ी खूबीसे चित्रित किये गए है।

अत. यह पुस्तक नवपाठकोके लिये व इतिहासप्रेमियोंके लिये बड़ी उपयोगी व प्रेरणादायक साबित होगी ऐसी मेरी दृढ धारणा है।

निवेदक

चन्दनमुनि

प्राक्कथन

जिस-किसी भी धर्मको जो कोई मानता हो, उस व्यक्ति-के लिए उस धर्मका इतिहास जानना परम आवश्यक है। जैनधर्मका क्या अर्थ है? जैनके मूल सिद्धान्त कौन-कौनसे हैं? जैनधर्मके मुख्यप्रवर्तक कौन थे? इस समय कौनसे तीर्थंकरका शासन चल रहा है? तथा किस तीर्थंकरके शासनकालमें विशेषव्यक्ति कौन थे? उपरोक्त प्रश्न यदि किसी जैनी-भाईसे कोई पूछ ले और वह बराबर उत्तर नहीं दे सके तो उसके लिए कितनी बडी विचारनेकी बात है, अस्तु!

इसी बातको लक्ष्य करके इस जैन-जीवन नामकी पुस्तकका निर्माण हुआ है। यद्यपि श्री आदिनाथपुराण, हरिवंशपुराण, महाभारत एवं श्री महावीरचरित्र आदि अनेक प्राचीन-जैनग्रन्थ विद्यमान हैं, फिर भी अतिविस्तृत होनेके कारण उनका पढ़ना और समझना हर एक आदमीके लिए अत्यन्त कठिन है।

इसमें क्या है?

इस पुस्तकमें मुख्यतया श्री ऋषभ, मल्लि, अरिष्टनेमि, पार्श्व और महावीर-इनसे पांच तीर्थंकरोंकी तथा उनसे सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तिविशेषोंकी जीवनियां सगृहीत है। जहां तक

हो सका है, बातें सक्षेप और बहुत ही सीधी-सादी भाषामें लिखी गई है, ताकि बाल, वृद्ध एवं अल्पशिक्षित भाई-बहिनें भी पढ़कर प्राचीन-आदर्शपुरुषोंके जीवनको जान सकें तथा उससे अमूल्य शिक्षाओंको ले सकें।

कहानियां दो तरहकी होती हैं- एक तो बनी हुई और दूसरी बनाई हुई। यद्यपि अहिंसा आदि तत्त्वोंको समझानेके लिए अपनी बुद्धिसे बनाई हुई कहानिया भी सत्य हैं, फिर भी बनी हुई घटनाका महत्त्व कुछ और ही होता है। इस पुस्तकमें लिखी हुई बातें ऐतिहासिक हैं और प्राचीन जैन-ग्रन्थोंसे प्रमाणित हैं अतः निःसंदेह महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रेरणा

आचार्यश्रीतुलसी बार-बार यही प्रेरणा दिया करते हैं कि प्रामाणिक-साहित्यका सर्जन जितना भी अधिक हो उतना ही धर्मप्रचार विशेषरूपसे होगा। सम्भव है। इसी पावनप्रेरणासे यह पुस्तक तैयार हुई हो! आशा ही नहीं, अपितु दृढ़ विश्वास है कि धर्मके जिज्ञासु लोग इसे पढकर अवश्य लाभ उठायेंगे और मेरे प्रयासको सफल बनायेंगे।

धनमुनि

अनुक्रम

जैन-जीवन

प्रसङ्ग पहला

भगवान् ऋषभदेव

बहुत से लोग सुनी, सुनाई बात कह देते हैं कि जैनधर्म पार्श्वनाथ तथा महावीरस्वामी का चलाया हुआ है, जो अभी तीन हजार वर्षों के अन्दर ही हुए है। यह कथन बिल्कुल असत्य है क्योंकि जैन धर्म के आद्यप्रवर्तक भगवान् ऋषभनाथ थे। वे आज से असंख्य वर्ष पूर्व तीसरे आरे में हुए थे। सब से पहले राजा होने के कारण वे आदिनाथ भी कहे जाने लगे।

युगलों का जमाना

उनसे पहले राजा-प्रजा का कोई हिसाब नहीं था क्योंकि युगलधर्म चल रहा था। जीवनभर में पति—पत्नी केवल एक पुत्र-पुत्री को युगलरूप से उत्पन्न करते थे और ४६,६४ एवं ७६ दिन उन्हें पालकर एकही साथ खांसी,छींक एवं जभाई द्वारा मरकर स्वर्गमे चले जाते थे एवं पीछे से वही जोड़ा पति-पत्नी के रूप मे परिणत हो जाता था। उस समय असि, मसी कृषि, शिल्प एवं वाणिज्यरूप कर्म कोई भी नहीं करता था। जिस किसी भी वस्तु की आवश्य-कता होती थी, स्वाभाविक कल्पवृक्षों द्वारा पूरी की जाती थी।

ऋषभनाथ का जन्म

काल के प्रभाव से क्रमश: कल्पवृक्षों की शक्ति में कमी होने लगी और युगलों में ईर्ष्या, द्वेष एवं कलह विशेषरूपसे बढने लगे। तब सात कुलकर(मुखिया)स्थापित किये गये। उन्होंने हाकार, माकार तथा

विचार ऐसे तीन दण्ड चलाए लेकिन कुछ समय के बाद उनका भी उल्लंघन हो गया और लड़ाई-झगड़े बहुत ही बढ़ गये। उस समय नाभि नामक सातवें कुलकर की पत्नी मरुदेवी की कुक्षि से भगवान् ऋषभ ने जन्म लिया। यह समय अकर्मभूमि मनुष्यों को कर्मभूमि बनाने की कोशिश कर रहा था एवं युगलधर्म को बदल रहा था।

परिवर्तन

अब से पहले किसी का विवाह नहीं होता था, किन्तु भगवान् ऋषभ का दो कन्याओं से पाणिग्रहण हुआ।

आगे कोई राजा नहीं होता था, परन्तु ऋषभ का राज्याभिषेक किया गया और वे आदिनरेश कहलाए।

युगलों के समय मात्र एक जोड़ा (पुत्र-पुत्री) उत्पन्न होता था, लेकिन ऋषभदेव के भरत-बाहुबलि आदि १०० पुत्र तथा ब्राह्मी और सुन्दरी ऐसे दो पुत्रियां हुईं।

युगलोंका कोई वंश नहीं होता था, परन्तु बाल्यावस्था में प्रभु को इक्षु विशेषप्रिय होने से उनका इक्ष्वाकुवंश कहलाया। आगे चल कर इसी का नाम सूर्यवंश एवं रघुवंश हो गया। श्री राम-लक्ष्मण भी इसी वंश में हुए थे।

भगवान ऋषभदेव ने तिरासी लाख पूर्व तक अयोध्या नगरी में राज्य किया एवं जगत् में राजनीति और संसारनीति का प्रचार किया।

लोगों का भोलापन

उस जमाने के आदमी बहुत भोले-भाले थे और उनमें ज्ञान की काफी कमी थी। कल्पवृक्ष क्षीण होने से स्वाभाविक अनाज उत्पन्न हुआ। अज्ञानवश भोले आदमी उसे पशुओं की तरह चर गये अतः सारे

विसूचिका रोग से पीडित हो गये। फिर प्रभु के कहने से अनाज निकालने लगे तो मुँह खुला होने से बैल उसे खाने लगे। प्रभुने कहा-बैलोंके मुँह बांध दो। उन्होंने मुँह बांध तो दिए, किन्तु काम पूरा होने पर भी अज्ञानवश नहीं खोले अतः बारह घड़ी तक बैल भूखे-प्यासे ही खडे रहे। फिर पता लगने पर प्रभुने उनके मुंह खुलवाए।

जंगलमे स्वाभाविक आग पैदा हुई। रत्न समझकर लोग उसे लेने दौडे। सबके हाथ-पैर आदि जल गये। प्रभु ने कहा--यह आग है। इसमे अनाजको पकाओ। बस, कहने की ही देरी थी मनोंबन्ध अनाज आग मे डाल दिया गया, किन्तु नहीं निकालने से वह भस्म हो गया। तब प्रभु ने खुद मिट्टी का बर्तन बना कर लोगों को बर्तन बनाना सिखलाया। उस दिन से लोग बर्तनों मे अनाज पका कर खाने लगे। ऐसे जिस-जिस काम की आवश्यकता होती गई, भगवान् बतलाते गये एव उसका फैलाव जगत् मे होता गया।

दीक्षा और अन्तरायकर्म

संसारनीति की शिक्षा देकर विश्व को धर्मनीति सिखलाने के लिये चार हजार पुरुषों के साथ प्रभु ने दीक्षा ली, किन्तु अन्तराय-कर्मवश बारह महीनों तक अन्न-पानी नहीं मिला। कोई हाथी-घोड़ा हाजिर करता था। कोई सोना-चाँदी-हीरे-पन्ने आदि धन लेने की प्रार्थना करता था तथा कोई रोटी पकाने के लिये कुंवारीकन्या लीजिए, ऐसे कहता था, लेकिन रोटी-पानी लेने के लिये कोई भी नहीं कहता था, कारण आज से पहले कोई भिक्षुक था ही नहीं।

अनेकमत

भूख-प्यास से पीड़ित होकर सारे के सारे चेले भाग गये। कोई कन्दआहारी तापस बन गया तो कोई मूल तथा फलआहारी। कोई

एकदण्डी हो गया तो कोई त्रिदण्डी। ऐसे अनेक मतों का प्रादुर्भाव हो गया।

अक्षयतृतीया

एक वर्ष के बाद बाहुबलि के पौत्र श्रेयांशकुमार ने जातिस्मरण-ज्ञान द्वारा भिक्षा की विधि जानकर प्रभु को इक्षुरस से पारणा करवाया। वह दिन अक्षयतृतीया (इक्षु तीज) कहलाया। एक हजार वर्ष की घोरतपस्या के बाद प्रभु ने केवलज्ञानी बनकर चारतीर्थ स्थापन किये। ऋषभसेन आदि ८४००० साधु हुए। ब्राह्मी आदि ३००००० साध्वियाँ हुईं, साढ़े तीन लाख श्रावक हुए और पांच लाख चौवन हजार श्राविकाएँ हुईं। माघ कृष्ण त्रयोदशी के दिन प्रभु दस हजार साधुओं के साथ कैलाशपर्वत पर मुक्ति में पधारे।

प्रसङ्ग दूसरा

मरुदेवी माता की मुक्ति

श्रीमरुदेवीमाताने बाह्यरूप से न तो कोई त्याग किया और न कोई तपस्या ही की। तपस्या क्या? साधु का बाना भी नहीं लिया, फिर भी आन्तरिक-शुद्धि से हाथी के होदे पर बैठी-बैठी ही सिद्ध बन गई। ऋषभदेव भगवान ने एक हजार वर्ष तपस्या करके केवल-ज्ञान प्राप्त किया। इधर माताजी पुत्र-विरह से बहुत व्याकुल हो रही थी, कारण उन्हें इनका कोई समाचार नहीं मिला था।

दादीजी के दर्शनार्थ एक दिन चक्रवर्ती भरत आए और उदासीनता का कारण पूछा। गद्-गद् स्वर से दादी ने कहा--बेटा! तुझे क्या फिक्र है, हमारा चाहे कुछ भी हो। तू तो चक्रवर्ती के पद में फूल रहा है और राज्य के आनन्द में मग्न हो रहा है। मेरा इकलौता पुत्र जो घर से निकल कर साधु बना था, उसे एक हजार वर्ष हो गए। क्या तूने कभी उसका पता लिया है? वह कहां रहता है? क्या खाता है? सर्दी, गर्मी और बरसात से उसे कौन बचाता है? मैं उसे पास बिठा कर अपने हाथों से खिलाती—पिलाती थी, एवं हर तरह से उसकी रक्षा करती थी। अब वह मेरा बेटा भूखा प्यासा कहीं जगलों में भटकता होगा, कौन पूछे उसका सुख और कौन करे उसकी सम्भाल।

वे परम आनन्द में हैं

दादीजी! आपके पुत्र सर्वज्ञ भगवान् बन गये हैं और वे परम

आनन्द मे हूं। जब वे यहाँ पधारें तब आप देखना उनके ठाट-बाट। पुत्र के समाचार सुन कर माताजी के हर्ष का पार नहीं रहा। समयानन्तर भगवान् वहां पधारे, समवसरण की रचना हुई एवं इन्द्र आदि देवता दर्शनार्थ आए। भरतजी ने दादीजी को भगवान के पधारने की बधाई दी। माता मरुदेवी ने मंगलगान शुरू करवाए एवं भरत आदि पोते, पड़पोते, लड़पोते तथा उनकी पत्नियों एवं अनेक दास-दासियों के परिवार से वह हाथी पर चढ कर भगवान के दर्शनार्थ चल पड़ी।

उपालम्भ

दूर से ज्यों ही माताजी ने पुत्र के दर्शन किए, वह मोह मे मग्न होकर ऐसे उलाहना देने लगी। अरे बेटा! मैं तो तेरे लिए दिनरात रो रही थी, किन्तु तूं तो मुझे कभी याद ही नहीं करता, एक चार आंगुल की चिट्ठी लिखने की भी तुझे फुर्सत नही मिलती। बेटा तू तो सुख मे मां को ही भूल गया। हां! हां! भूलना ही था। तुझे मेरी क्या गर्ज। सिर पर तेरे तीन छत्र हैं, चामर वीजें जा रहे है, ऊपर अशोकवृक्ष है, बैठने के लिए स्फटिकसिंहासन है और इन्द्र—इन्द्राणी हाथ जोड़ कर तेरी सेवा कर रहे है। अब मां की याद आए भी तो कैसे!

केवलज्ञान

ऐसे मोह विलाप करते-करते ही विचार बदले और सोचने लगी कि ये तो वीतराग भगवान है, इनके क्या मां और क्या बेटा। मै व्यर्थ ही मोह मे पागल हो रही हूं। बस, माताजी क्षपक-श्रेणी चढ़ गई और वहीं हाथी पर बैठी—बैठी केवलज्ञान पा कर मोक्ष पधार

गई। भगवान्ने व्याख्यानमें फरमाया कि मरुदेवी माता मुक्त हो गईं। भरतजी चमककर दादीको सम्भालने लगे तो मात्र शरीर ही मिला। बड़ा भारी आश्चर्यजनक दृश्य था। लोग कहने लगे कि पुत्र हों तो ऐसे ही हों। एक हजार वर्षकी घोर तपस्यासे जो अनमोल ज्ञानरत्न प्राप्त किया, वह सर्वप्रथम अपनी परम पूज्य माताजीको लाकर दिया एवं उन्हे अनन्त मुक्तिसुखों मे भेजा।

प्रसङ्ग तीसरा

मुट्ठी कहाँ की कहाँ (बाहुबलि)

चढ़ते यौवनमें कामको जीतना जितना महत्व रखता है; उतना वृद्ध-अवस्थामें नहीं रखता। धन स्वजन, एवं विजयके सद्भावमें साधु बनना जितना मुश्किल कहलाता है, इनसब चीजोंके अभावमें साधु बनना उतना मुश्किल नहीं कहा जा सकता। हारकर तो हर एक घरसे निकल पड़ता है, परन्तु जीतकर त्याग करने वाले महापुरुष तो बाहुबलि जैसे विरले ही होंगे।

भगवान ऋषभदेवके सौ पुत्र थे। उनमें भरत और बाहुबलि दो मुख्य थे। प्रभुने भरतको अयोध्या गद्दी दी, बाहुबलि को तक्षशिला का राज्य दिया और शेष ९८ पुत्रोंको भी यथायोग्य कुछ देकर स्वयं साधु बन गये।

भरत चक्रवर्ती थे, अतः उन्होंने सारे भरतक्षेत्र में अपनी आज्ञा स्थापित की। अट्ठानवे भाइयोंने भरत की सत्ताको स्वीकार न करके प्रभु के पास दीक्षा ले ली। जब बाहुबलिको आज्ञा माननेके लिये कहा गया तो वे नहीं माने। तब दोनों भाइयोंका बारह साल तक घोरसंग्राम हुआ। खून की नदियाँ बह चलीं, फिर भी कोई निपटारा नहीं हो सका।

पांच युद्ध

मानव-सृष्टिके प्रारम्भमें ही ऐसा प्रलय देखकर देवता बीचमें पड़े और दोनोंको न्यों त्यों समझाकर निम्न लिखित, पाच युद्ध निश्चित किये।

(१) दृष्टियुद्ध (२) वचनयुद्ध (३) बाहुयुद्ध
(४) मुष्टियुद्ध (५) दण्डयुद्ध ।

१ दृष्टियुद्धः— दोनों भाई स्थिरदृष्टि होकर एक दूसरेके सामने खडे हो गये, किन्तु भरतकी आंखोंसे पानी चल पड़ा और वे हिलने लगीं ।

२. वचनयुद्धः— चक्रवर्तीने प्रचण्ड-सिंहनाद किया, किन्तु बाहुबलिने अपने सिंहनादसे उसे ढाक दिया ।

३. बाहुयुद्ध — दोनों वीर कुश्ती करने लगे और विचित्र-खेल दिखाने लगे । लाग देख ही रहे थे कि बाहुबलिने भरतको गेंदकी तरह आकाशमे उछाल दिया । यह दृश्य अद्भुत एवं रोमांचकारी था । अब भरतको जीनेकी भी आशा नहीं रही थी, लेकिन कनिष्ठ भ्राताके दिलमे भ्रातृ-प्रेम उमड आया और उसने नीचे गिरते भरतको झेल लिया एव मौतसे बचा लिया । इस समय भरत मात्र पृथ्वीकी तरफ झांक रहे थे ।

४. मुष्टियुद्ध— भरतने लघुभ्राता के सिरमे मुक्का इतने जोरसे मारा कि वह क्षणभरके लिये स्तब्ध-सा हो गया, किन्तु शीघ्र ही सम्भलकर उसने ऐसा विचित्र मुष्टिप्रहार किया, जिससे भरत बेहोश हो गये एवं उचित उपचारोंसे उन्हें सचेत किया गया ।

५. दण्डयुद्ध— चक्रवर्तीने दण्डरत्नको घुमाकर इतने जोरसे पटका, जिससे बाहुबलि घुटनों तक जमीनमें घुस गये । वे तुरन्त ही उछल कर बाहर आए और दण्डके बदलेमें दण्डका इतना जबरदस्त जबाब दिया कि चक्रवर्ती कण्ठ तक पृथ्वी मे प्रविष्ट होगये एवं देवों द्वारा उनकी हार घोषित करदी गई ।

मर्यादाका भंग

हारका दुःख न सह सकने के कारण भरतने अपनी मर्यादाका भंग करके बाहुबलिको मारनेके लिये चक्र चलाया, लेकिन दिव्यचक्रने उनका वध नहीं किया प्रत्युत उन्हें प्रणाम करके लौट आया। यह देखकर बाहुबलिके क्रोधका पारावार नहीं रहा और वे विकराल कालरूप बन कर मुष्टि घुमाते हुए भरतको मारने चले। देवोंने पैर पकड़ कर उन्हें शान्त किया, तब वे बोले-मेरी मुष्टि खाली नहीं जा सकती। लो! भरतके सिरके बदले में इसे अपनेही सिर पर रखता हूँ। ऐसे कहकर वहीं पर पंचमुष्टि लोचकर लिया और साधु बनकर ध्यानस्थ हो गये। अब भरतकी आंखें खुलीं और उन्होंने भाईके चरण छूकर विनम्र शब्दोंमें कहा-भाई! क्षमा करो, मेरी तुच्छताको भूल जाओ और राज्यमें चलो। लेकिन उन्हें राज्यमें अब क्या चलना था, उन्होंने तो त्याग कर दिया सो कर ही दिया। धन्य है महाबली बाहुबलिके आदर्श-त्याग को।

प्रसङ्ग चौथा

हाथीसे उतरो

जो काम लोहेका तीर नहीं कर सकता, वह काम वचनका तीर कर सकता है। शीर्षकमे लिखे हुए **हाथीसे उतरो** इस वाक्यने क्या ही कमाल कर दिया। एक अकडे हुए महामुनिको झुका दिया और सर्वज्ञ भगवान् बना दिया। क्या आप जानते हैं कि वे महामुनि **श्रीबाहुबलि** थे और वचनका तीर मारनेवाली महासतियाँ **ब्राह्मी-सुन्दरी** थीं।

सुन्दरीकी तपस्या

भगवान् ऋषभदेवको केवलज्ञान होते ही ब्राह्मी–सुन्दरी दीक्षा लेने लगीं, किन्तु भरतराजाने अतिसुन्दरताके कारण सुन्दर को आज्ञा नहीं दी एवं उससे विवाह करना चाहा। सुन्दरीने विवाह करनेसे साफ इन्कार कर दिया। फिर भी भरत नहीं माने और उसे अपने महलोंमे रखकर स्वयं दिग्विजयार्थ चले गये। भरतक्षेत्र की विजय प्राप्त करनेमे उन्हें साठ हजार वर्ष लगे। पीछेसे सुन्दरीने आयबिलकी तपस्या शुरू कर दी। घोर तपस्याके कारण उसका शरीर बिल्कुल निस्तेज–सौन्दर्यहीन एवं क्षीण होगया। चक्रवर्ती भरत जब वापस आए तो उन्होंने वहाँ मात्र अस्थि-पिंजर देखा। बस, देखते ही उनका विकार शान्त हो गया और सुन्दरीको दीक्षाकी अनुमति दे दी एवं वह साध्वी बनकर आत्मसाधना करने लगी।

ध्यानस्थ गुफामें-श्री बाहुबलि

इधर श्री बाहुबलि युद्धमें विजयी होकर संयमी तो बन गये, किन्तु अभिमानरूप हाथीसे नहीं उतर सके। उन्होंने सोचा-यदि भगवानके पास जाऊँगा तो छोटे भाई जो मेरेसे पहले साधु बने हैं, उन्हें नमस्कार करना पड़ेगा। ऐसा विचार करके वे महामुनि ध्यानस्थ होगये। स्तम्भाकार खड़े-खड़े उनको एक वर्ष बीत गया। उनके शरीर पर बेलियाँ छा गईं, पक्षिओंने घोंसले बना लिए, सांप लटकने लगे तथा हाथी, सिंह, चीते वगैरह कोई खम्भा समझकर उसका सहारा लेकर अपने शरीर को खुजलाने लगे।

भाई! हाथीसे उतरो

इतना कुछ होने पर भी महामुनि मेरुवत् निश्चल रहे। फिर भी केवलज्ञान नहीं हुआ। एक दिन अकस्मात् आवाज आई, **भाई! हाथीसे उतरो अन्यथा मुक्ति नहीं मिलेगी।** सुनते ही मुनि चमके और विचार करने लगे। अरे! यह क्या? कहां है हाथी? मैं तो साधु हूँ और एकवर्षसे भूखा-प्यासा खड़ा हूँ। इधर कहनेवाली भी ब्राह्मी-सुन्दरी साध्वियां हैं जो असत्य तो बोल ही नहीं सकतीं। बस, समझ गये और मान हाथी से उतर कर ज्यों ही अपने छोटे भाइयोंको वन्दना करने लगे, उन्हें वहीं पर केवलज्ञान हो गया। फिर भगवानके दर्शन किये एवं अन्तमें मुक्तिधामको प्राप्त हुए।

—:o:—

प्रसङ्ग पांचवां

काँचके महलमें केवलज्ञान

चक्रवर्ती - भरत

दुनियाँ मे दो तरहके मनुष्य होते हैं - एक तो मायाके मालिक और दूसरे मायाके गुलाम। मालिक चीनीकी मक्खीके समान स्वाद लेते हैं और उसमे फंसते नहीं, परन्तु गुलाम श्लेष्मकी मक्खीकी तरह मायामें फंसकर बरबाद हो जाते हैं एवं स्वाद भी कुछ नहीं ले पाते। श्लेष्मकी मक्खी तो सारी दुनियाँ बन ही रही है, किन्तु धन्य तो वे हैं जो चीनीकी मक्खी बनकर भरत-चक्रवर्तीवत् देखते-देखते उड़ जाते हैं।

भरतकी ऋद्धि

बाहुबलि आदि बन्धु-गण और बहिन सुन्दरीकी दीक्षाके बाद भरत अयोध्यामे राज्य करने लगे। उनके नव निधान थे, चौदह रत्न थे, बीस हजार चान्दीकी खानें थी, बीस हजार सोने की खानें थीं, सोलह हजार रत्नों की खानें थी। चौसठ हजार रानियाँ थीं, बत्तीस हजार राजा उनकी आज्ञा मानते थे एवं पच्चीस हजार देवता उनकी सेवा करते थे। इतना कुछ होते हुए भी वे अन्दरसे बिल्कुल उदासीन एवं विरक्त रहते थे और खुदको राजा न मानकर एक मुसाफिर मानते थे। यद्यपि चक्रवर्ती होनेके नाते उनके चौरासी लाख हाथी थे, चौरासी लाख घोडे थे, चौरासी लाख सांग्रामिक रथ थे और छियानवे करोड़ पैदल सेना थी। समय

समय पर वे युद्ध भी करते थे, देश-द्रोहियोंको दण्ड भी देते थे और इधर अपनी प्रिय-प्रजाका पालन भी पूरे ध्यानसे करते थे। लेकिन यह सब काम उनके लिए मात्र नटकी तरह पार्ट अदा करना था।

अनासक्तिकी पराकाष्ठा

उनकी अनासक्ति बढ़ती-बढ़ती इतनी बढ़ गई थी कि एकदिन वे अपने काचके महलमें वस्त्र निकालकर नहाने लगे। उस समय उनको अपना शरीर नग्न-सा प्रतीत हुआ। मात्र एक अँगुली; जिसमें मुद्रिका पहनी हुई थी, सुन्दर लगी। अँगुलीसे मुद्रिका हटा ली तो वह भी नंगी होगई। फिर सारे वस्त्राभूषण धारण कर लिए तो शरीर पूर्ववत् सुन्दर लगने लगा। फिर निकाल दिए तो असुन्दर लगने लगा। बस, कुछ समय यही काम चालू रहा। अन्तमें उन्हें विश्वास होगया कि शरीर तो असुन्दर और नग्न ही है, यह शोभा ऊपरके पदार्थोंकी है अतः इस शरीरका मोह करके आत्माको भूल जाना अज्ञानके सिवा और कुछ नहीं है। चक्रवर्ती ऐसा विचार करते-करते शुक्लध्यानमें जुड़ गये और घातिक कर्मोंका नाश करके उसी कांचके महलमें केवलज्ञानी बन गये। वास्तवमें जो अनासक्तभावसे काम करते हैं, उनके कर्मोंका बन्धन बहुत कम होता है।

—❀—

प्रसङ्ग छट्ठा

दवा नहीं की

(राजर्षि—सनत्कुमार)

सभी कहते हैं-काया कच्ची है, कांचकी गिलास है, मिट्टी की ढेरी है एवं देखते-देखते नष्ट होने वाली है। लेकिन थोड़ासा सरदर्द होते ही एस्प्रोकी गोलियाँ खोजी जाती हैं, थोड़ा-सा बुखार होते ही इन्जेक्शनकी तैयारियाँ होने लगती हैं, और तो क्या ' जरासी बदहज़मी होने पर भी फटा-फट सोडेकी बोतल खोली जाने लगती हैं। अब बतलाइए, खाली **कायाकच्ची** कहनेसे क्या बना ? वास्तवमें काया कच्ची **श्रीसनत्कुमार** चक्रवर्ती (जो श्रीधर्मनाथ और शान्तिनाथ भगवान्के मध्यकाल में हुए) ने समझी थी। एक जीभसे कितना-क कहा जाये। उन्होंने सात-सौ वर्ष तक अनेक भयकर रोग सहन किए, किन्तु दवा बिल्कुल नहीं की।

देवोंका आगमन

एक दिन स्वर्गमे इन्द्रने कहा कि सनत्कुमार—चक्रवर्तीका जैसा रूप है, वैसा आज दुनियामें किसीका नहीं है। यह सुनकर परीक्षार्थ दो मिथ्यात्विदेवता वृद्धब्राह्मणोंका रूप बनाकर आए। यद्यपि चक्र-वर्ती उस समय स्नान करहे थे, फिर भी अतिउत्सुकता जानकर उन्हें अन्दर आने दिया। आश्चर्यकारी रूप देखकर ब्राह्मण बोले, भाई! रूप तो वास्तव मे रूप ही है, इसकी जितनी प्रशंसाकी जाए थोड़ी है। चक्रवर्तीके मनमे प्रशंसा सुनकर अहंकार हुआ। वे कहने

लगे- अरे! अभी क्या देखरहे हो, जब मैं सज-धज कर सभामें बैठूं तब देखना। व्यवस्थित स्थानमें ब्राह्मण ठहरे और इधर महाराजने नहा धोकर सदाकी अपेक्षा कुछ विशेष शृंगार किए एवं वे राजसभामे विराजमान हुए।

रूप बिगड़ गया

ब्राह्मण आए, किन्तु रूप देखकर नाक सिकोड़ते हुए कहने लगे-महाराज! रूप तो बिगड़ गया। बिगड़ क्या गया, आपके शरीरमे कीड़े भी पड़ गये। देखिए, पीकदानीमे जरा-सा थूक कर। साश्चर्य चक्रवर्तीने थूककर देखा तो बात सही थी। बस, रंगमे भंग हो गया और सारा ही खेल बदल गया। चक्रवर्तीने उसी क्षण राज्य वैभव को त्याग दिया एवं साधु बनकर अपने सुकुमार शरीरको तीव्रतपस्या में लगा दिया। रोग दिन-परदिन बढते गये, अन्तमे गलितकुष्ट होकर सारा शरीर सड़ गया। फिर भी मुनिने बिलकुल दवा नहीं की और मेरुवत् अडोल रहकर ध्यान एवं तपस्यामें ही लीन बने रहे।

पुनः प्रशंसा

राजर्षिके अद्भुत धैर्यको देखकर इन्द्रने देव सभामें पुनःकहा-साधु संसारमे एक-एकसे बढते-चढते हैं, लेकिन महर्षि-सनत्कुमार जैसे दृढप्रतिज्ञ और धैर्यवान मुनि आज दूसरे कोई नही है। लगभग सात-सौ वर्षोंसे घोर-पीड़ा सहन कर रहे हैं, फिर भी कोई दवा नहीं करते। अरे! दवा तो करें ही क्या, दवा करने का मन भी नहीं करते। पहलेवाले वे ही दो देवता परीक्षार्थ वैद्यरूपसे उपस्थित हो कर प्रार्थना करने लगे-प्रभो! कृपया हमारी औषधि लीजिए एवं बीमारी का प्रतिकार करके इस शरीरको स्वस्थ कीजिए। दो-तीन बार विनति करने पर ध्यान खोलकर मुनि बोले। भाई! तुम शरीर की बीमारी मिटाते हो या आत्माकी भी मिटा सकते हो? वैद्यबोले

महाराज! आत्माकी तो बीमारी आप जसे महापुरुष ही मिटा सकते है, हम तो मात्र शरीरकी ही बीमारी मिटाते हैं। यह सुनते ही राजर्षि ने अपने थूकसे एक अंगुली भरकर सडे हुए शरीर पर लगाई। बस, लगानेकी ही देरी थी, जितनी दूर मे थूक लगा। शरीर कंचन-वर्ण होगया और देवता देखते ही रह गये। ऋषि बोले, भाई! तनकी बीमारी मिटानेमें क्या बड़ी बात है? बड़ी बात तो मनकी बीमारी मिटानेमे है, अतः ध्यान एव तपस्या द्वारा इसीका इलाज कररहा हूँ। धन्य-धन्य कहते हुए देवता प्रकट हो गये और मुक्त कंठोंसे मुनिके गुनगान करते हुए स्वस्थान चले गये। मुनिने एक लाख वर्ष संयम पाला और अन्तमे केवलज्ञान पाकर परमपदको प्राप्त हुए। ऐसे उत्तम पुरुषोंके स्मरण मात्रसे निःसन्देह आत्मकल्याण होता है।
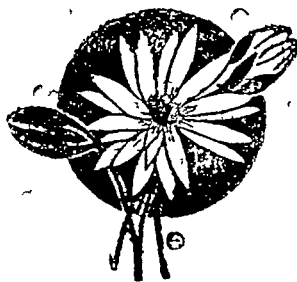
प्रसङ्ग सातवाँ

मल्लि प्रभु

ज्ञानी कहते हैं कि शरीरमें साढ़े तीन-करोड़ रूं हैं और साढ़े छः करोड़ रोग हैं। ऊपरसे चाहे कितने ही शृङ्गार सजे जाएं, किन्तु अन्दर दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध है। यह बात मल्लिप्रभुने बहुत ही युक्तिसे समझाई थी और मोह-अन्ध छहों नरेशोंको वैरागी बना दिया था।

मल्लि-प्रभु मिथिलापति कुम्भ राजाकी रानी प्रभावतीकी एक रति-रूपा कन्या थी। यौवन आने पर उनकी सुरम्य-नीलकान्तिकी महिमा दूर-दूर तक फैल गई और बड़े-बड़े नरेश याचना करने लगे। किन्तु कुमारीने बचपनसे ही ब्रह्मचर्य स्वीकार कर लिया था अतः जो कोई भी विवाहसम्बन्धी प्रश्न रखता था, कुम्भ नरेश इन्कार कर देते थे।

एक बार मल्लिकुमारीसे जबरदस्ती विवाह करनेके लिए अङ्ग, कुणाल, काशी, कौशल, कुरु और पंचाल—इन छः देशोंके राजाओंने एक ही साथ मिथिलानगरी पर घेरा डाल दिया और कुम्भ राजासे दूतों द्वारा कहलवाया कि या तो वे इन्हें अपनी पुत्री दे दें या लड़ाई करनेको तैयार हो जाएँ।

मल्लिकुमारीकी युक्ति

मिथिलापति घबरा गए और चिन्तासमुद्रमें गोते लगाने लगे, क्योंकि पुत्री तो किसी भी तरह विवाह करनेको तैयार नहीं थी और छहों नरेशोंसे युद्ध करनेकी खुदके पास शक्ति नहीं थी। कुमारी ने पिताजीको सान्त्वना दी और राजाओंसे कहलवा भेजा कि आप लोग उत्तावल न करे, हर एक काम शान्तिसे सम्पन्न होता है। मै आपसे अमुक दिन मिलूंगी और अपने विवाहके विषयमें बातचीत करूंगी। ऐसे छहों नरेशोंको शान्त बनाकर मल्लिकुमारीने शीघ्रातिशीघ्र एक मनोहर मोहनशाला बनवाई और उसमे ठीक अपने ही जैसी पुतली स्थापित की। पुतली अन्दरसे बिल्कुल पोली थी एव उसके मस्तक पर एक द्वार था। कन्या हर रोज् भोजनका एक ग्रास उसमें डाला करती थी। ज्योंही वह भर गई, अच्छी तरह ढक्कन लगा कर उसे अनेक दिव्य-वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित कर दिया और यथोचित व्यवस्था करके छहों मेहमानोंको आमन्त्रण दे दिया।

मोहनशालामें मेहमान

बेचारे आमन्त्रणकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे, तुरन्त आए और पुतलीको सच्ची मल्लिकुमारी समझकर स्तब्धसे होकर दांतोंमें अंगुलियां धरने लगे। इतनेमें अद्भुत रूपछटा फैलाती हुई कुमारी वहां आई। आतेही उन नरेशोंकी आंखें खुलीं। अरे! रे! हम तो भूल ही गये, ऐसे कहकर वे विस्मित नेत्रोंसे कुमारीकी

तरफ देखने लगे। इधर कुमारीने आते ही उस पुतलीका ढक्कन खोला। बस, खोलते ही सड़े हुए अनाज़की ऐसी बदबू आई कि सारे नाक बन्द करके मुंह बिगाडने लगे। तब मल्लीश्वरीने हंस कर पूछा—आप लोग मुंह क्यों बिगाड़ रहे हैं? बदबू ही से तो न? अब बतलाइए। जिस मेरे शरीर पर आप मोहित होरहे हैं उसमें हाड़-मांस, मल-मूत्र आदि अशुचि-पदार्थोंके सिवा और कौन-सी अच्छी चीज़ है? छोड़िए इस रूपके मोहको और कीजिए अपने पूर्वजन्मको याद। जब हम सातों मित्र-मुनि मिल कर घोरतपस्या कर रहे थे, तब मैंने आपके साथ तपस्यामें कुछ माया (कपट) की थी अतः तीर्थंकररूपसे अवतरित होकर भी मैं स्त्री बन गई। बस! सुनते-सुनते ही छहों नरेशों को पूर्वजन्मका ज्ञान होगया और सारा खेल ही बदल गया।

दीक्षा और मुक्ति

मल्लिप्रभुने संयम लिया और घातिकर्मोंका क्षय करके अरिहन्तपदको प्राप्त किया। इधर छहों राजा भी साधु बनकर प्रभुके आगे गणधर कहलाए। प्रभु सौ वर्ष तक घरमें रहे और सौ-सौ वर्ष संयम पालकर सम्मेतशिखर पर्वत पर गणधरों सहित मोक्षमें पधारे। जय हो! जय हो! श्रीमल्लिप्रभुकी।

प्रसङ्ग आठवां

विवाह नहीं किया

(भगवान् अरिष्टनेमि)

"सब लोग जीना चाहते हैं कोई भी मरना नहीं चाहता अतः किसीको मत मारो।" यह शास्त्रवाणी हरएक प्राणी पढ़ते है। किन्तु भगवान् अरिष्टनेमि ने इसे क्रियात्मकरूप मे परिणत करके दिखलाया एवं दयाभावसे प्रेरित होकर विवाह-मण्डपके पास आ कर भी विवाह विना किये ज्यों के त्यों वापस लौट गए।

सौरिपुर नगरके यदुवंशीय राजा समुद्रविजयकी महारानी शिवादेवीकी कुक्षिसे श्रावण शुक्ला छठको प्रभुका शुभ जन्म हुआ था। श्रीकृष्ण उनके चचेरे बडे भाई थे। जरासन्ध राजाके डर-से सारे ही यादव सौराष्ट्र देशमें चले गये और वहां द्वारकानगरी बसाकर श्रीकृष्णके आधिपत्यमें रहने लगे एवं श्रीनेमिकुमार क्रमशः वृद्धि पाने लगे।

द्वारकामें हलचल

एक दिन मित्रोंके साथ क्रीड़ा करते हुए वे आयुधशालामें पहुंचे और खेल ही खेलमे श्रीकृष्णके दिव्यशंख को उठाकर जोर से बजा दिया। शंखकी प्रचण्डआवाजसे सारी द्वारकामे हल-चल मच गई। इस अनूठे पराक्रमको देखकर श्रीकृष्ण उनसे पाणिग्रहण करनेका आग्रह करने लगे। प्रभुने काफी आना-कानी की, लेकिन सभी तरहसे इतना दबाव डाला गया जिससे अन्तमे उनको मौनी ही बनना पड़ा और विवाहकी कार्रवाई चालू कर

दी गई।

प्रभुकी बरात

महाराज उग्रसेनकी सुपुत्री राजीमती (जिसके साथ पिछले आठ जन्मोंका प्रेम था) से नेमिकुमारका सम्बन्ध किया गया और कृष्ण-बलभद्र आदि यादवनरेश एक विशाल बरात लेकर बड़ी धूमधामसे उनका विवाह करनेके लिए चले। इधर महाराज उग्रसेनने भी विवाहके शुभअवसर पर बड़ी जबरदस्त तैयारियाँ कीं। बरातियोंके भोजनार्थ अनेक पशु-पक्षी तथा नाना प्रकारकी अन्य भोजनसामग्री एकत्रित की। इधर राजकुमारी राजीमती अनेक सखियोंके साथ रंगमण्डपमें अपने भावीपति भगवान् अरिष्टनेमिकी प्रतीक्षा करती हुई स्वकीय सौभाग्यकी सराहना करने लगी।

परिवर्तन

राजकुमारनेमि ज्यों ही विवाहमण्डपके पास आए त्यों ही उन्होंने आक्रन्दन करते हुए अनेक पशुपक्षियोंको देखा। सारथिसे इनका कारण पूछा, तब उसने कहा—आपके विवाहमें इन सबका भोजन होगा। यह सुनकर कृपासिन्धु भगवानने सोचा, यदि मेरे कारण इनके जीवोंका घात हो रहा है तो यह विवाह मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं होगा। ऐसे विचार कर उसी समय वापस लौट चले। अपनी आत्माको पापसे बचाना, शास्त्रमें इसीका नाम सच्ची दया है। दया

और मोहका भेद समझनेवाले पुरुष तत्त्वज्ञानी विरले ही हैं।

रंगमें भंग

भगवान् के वापस फिरते ही रंगमें भंग हो गया और हाहाकार मचगया। दोनों ही पक्षोंके मुख्यपुरुषोंने काफी कुछ कोशिशें कीं, लेकिन प्रभुने एक भी नहीं सुनी। स्वस्थान आकर परम्परागत-व्यवहारानुसार वार्षिकदान दिया (जिसमे प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख एव वर्ष मे तीन अरब अठासी करोड अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राएँ दीं) फिर सहस्राम्रवनमे इन्द्रादि देवों एवं कृष्णादिनरेशोंके सम्मुख पंचमुष्टि-लौच करके उन्होंने भागवती दीक्षा स्वीकार की। चौवनदिन बाद मोहकर्मका नाश करके वे केवलज्ञानी बने और बाईसवे तीर्थंकर कहलाए। कृष्ण-वासुदेव भगवान्के अनन्य-भक्त थे। उन्होंने प्रभुकी बड़ी सेवाएँ कीं। प्रद्युम्नकुमार आदि कृष्णके पुत्रों एव सत्यभामा, रुक्मिणी आदि अनेकों रानियोंने प्रभुके पास संयम स्वीकार किया।

विशेष उपकारके कारण भगवान् द्वारकानगरीमे बहुत बार पधारे। उनके शासनकालमे अठारह हज़ार साधु हुए, राजीमती आदि चालीस हज़ार साध्वियाँ हुईं। एक लाख ६६ हज़ार श्रावक हुए और तीन लाख ३६ हज़ार श्राविकाएँ हुईं। प्रभु तीन-सौ वर्ष घरमे रहे और सात-सौ वर्ष संयम पालकर पांच-सौ छत्तीस साधुओं के साथ रैवताचल पर्वत पर निर्वाणको प्राप्त हुए।

प्रसङ्ग नौवां

गुफामें ज्ञानके चाबुक

कालेनागके साथ खेलना मुश्किल है, मेरुपर्वतको हाथ पर उठाना कठिन है, समुद्रको भुजासे पार करना दुष्कर है, किन्तु इन सभी कार्योंसे काम-विकारको जीतना कहीं लाखों-करोड़ों गुना दुष्करतम है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि इसके आगे हारगये हैं, भ्रष्टहोगये हैं तथा अपना सर्वस्व खो बैठे हैं। लाख-लाख धन्यवाद तो उनको है, जिन्होंने स्वय तो कामको जीता सो जीता ही, लेकिन महासती राजीमतीकी की तरह दूसरोंको भी ज्ञानके चाबुक मारकर रास्ते पर ला दिया।

राजीमती और रथनेमि

राजीमती महाराज उग्रसेनकी पुत्री थी और भगवान् अरिष्टनेमिके साथ उसका विवाह निश्चित हुआ था, किन्तु भावीवश उसे बीच ही में छोड़कर प्रभु संयमी बन गये। पीछेसे उनके छोटे भाई रथनेमिने राजीमतीसे विवाहकी प्रार्थनाकी। सतीने कहा—देवर ! मैं प्रभुकी छोड़ी हुई हूँ, अतः वमनके समान हूँ। क्या वमनको पशुओं-कुत्तोंके सिवा कोई भला आदमी खाता है? रथनेमिको वैराग्य होगया और वे साधु बनकर घोरतपस्या करने लगे।

गिरनारकी तरफ

भगवान अरिष्टनेमिको केवलज्ञान होने के बाद इधर राजीमतीने भी दीक्षा ली एवं वह साध्वियोंमें मुख्या बनी। एक दिन वह

साध्वीसंघके साथ प्रभुके दर्शनार्थ गिरनार पर्वत जारही थी। अचानक जोरसे वर्षा आगई। साध्वियाँ इधर-उधर जहाँ भी स्थान मिला, खड़ी रहगईं एवं राजीमती एक गुफामें जाकर अपने वस्त्र निचौड़कर सुखाने लगी, किन्तु उसको पता नहीं था कि अन्दर रथनेमिमुनि ध्यान कररहे हैं। अचानक बिजली चमकी और मुनिने एकान्तमे राजीमतीका अद्भुत रूप देखा।

मन विचल गया

मुनिका मन विचल गया। वे मुनिपदका भान भूलकर भोगकी प्रार्थना करने लगे। महासती चमकी एवं शीघ्र ही वस्त्रोंसे अपने तनको ढांककर अलौकिक साहसभरी वाणीसे कहने लगी—मुने! आप कौन हैं, आपका कुल कितना पवित्र है, किस वैराग्यसे आपने दीक्षा ली है, क्या आप सब कुछ भूल गये? जो ऐसी घृणित बात कररहे हैं। मैं त्यागे हुए भोगोंको सपनेमे भी नहीं चाहती आप तो क्या, साक्षात् कुवेर, इन्द्र और कामदेव भी आ जाएं तो भी मै परवाह नहीं करती। आप लाख-लाख धिक्कारके अधिकारी हैं, जो मुनिवेषको लजा रहे हैं।

मुनि होशमें आये

महासतीके वाक्योंसे मुनि होशमें आए और भगवान्के चरणोंमे अपनी दुष्प्रवृत्तिका प्रायश्चित्त करके जन्मसरणसे मुक्त हुए। महासती राजीमतीने भी शुद्ध संयम पालकर केवलज्ञान प्राप्त किया एवं भगवान् अरिष्टनेमिसे चौवन दिन पहले सिद्ध-गतिको प्राप्त हुई।

प्रसङ्ग दसवां

श्री कृष्ण और बलभद्र

जो थोड़ीसी ताकत पाकर अकड़ जाते हैं, जो दो पैसे कमाने पर फूलकर ढोल बन जाते हैं और दो चार बेटे-पोते होने पर जिनकी आंखें जमीन पर नहीं टिकतीं, उन सज्जनोंको कृष्ण महाराजका जीवन अवश्य पढ़ना चाहिए। जिनके जन्म-समय कोई गीत गानेवाला नहीं था और मध्य-समय सहस्रों नरेश एवं देवता हाजिर रहते थे तथा अन्तसमय कोई रोनेवाला भी पास नहीं रहा।

जैनइतिहासानुसार लगभग ८७ हजार वर्ष पूर्व कृष्णका जन्म मथुरा पुरीमें भाद्र कृष्ण अष्टमीकी रातको हुआ था। एक दिन राजा कंसकी महारानी जीवयशाने अतिमुक्त मुनिका हास्य किया, तब मुनिने क्रुद्ध होकर कहा—इस देवकी (जो तेरी ननन्द है) का सातवा गर्भ तेरे पतिको जानसे मारेगा। रानीने घबड़ाकर सारा हाल कंसको सुनाया और उसने छल करके वसुदेवजीसे देवकीके सारे पुत्र मांग लिए एवं बहिन-बहनोईको मथुरामें ही रख लिया। पुत्र होते गए और कंस उन्हें मारता गया।

कृष्णका जन्म

ऐसे छः पुत्र तो मर चुके अब श्री कृष्णका जन्मसमय आया तब कंसके रखे हुए आरक्षक चारों तरफ सजगता से चौकी लगाने लगे, किन्तु मायावश सबको नींद आ गई। जन्म होते ही

रानी के आग्रहसे पुत्रको लेकर महाराज वसुदेव चले और यमुना पार करके नन्दरानी यशोदाको वह पुत्ररत्न सौंप दिया एवं उसके वदलेमे उसकी नवजात-पुत्रीको लेकर लौट आए।

छिन्ननाशिका

पहरेदार जागे और कन्याको लेकर कंसके पास आए। देखते ही वह चौंककर कहने लगा, क्या यह वालिका मुझे मारेगी? नहीं! नहीं! कभी नहीं मार सकती। यूं मन ही मन समाधान करके उसे छिन्ननाशिका वनाकर वापस लौटा दिया। इधर गोकुलमें श्री कृष्ण सानन्द वढ़ने लगे और एक ग्वालके वेषमें ग्वालवालोंके साथ वचपन विताने लगे। उनका नाश करनेके लिए शकुनि, पूतना आदि अनेक शत्रु वहां आए, लेकिन सारे पराजित हुए। शत्रुओंका भेद पाकर कृष्णके वड़े भाई वलभद्रजी गोकुलमे रहकर उनकी रक्षा करने लगे और उन्हें पढ़ाने भी लगे।

देवकीके घर कंस

एक दिन राजा कंस कार्यवश देवकीके घर आया। वहां वह छिन्ननाशिका नजर चढ़ी। तुरन्त ही उसे मुनिकी कही हुई वात याद आ गई एवं उसका दिल धड़कने लगा। घर आकर ज्योतिषीसे पूछा कि भाई! क्या षड्यन्त्र है? तुम अपने ज्ञानसे वतलाओ! क्या मेरा शत्रु जीवित है? तथा अगर है, तो मैं उसे कैसे पहचान सकता हूँ? ज्योतिषीने कहा—जो तेरे वृषभ, अश्व, हस्ति-युगल, खर, मेष और मल्ल-युगलको मारेगा एवं कालिय-नाग

का दमन करेगा, वही तेरा हन्ता होगा। वह जीवित है और मारनेसे मर भी नहीं सकता। कंस घबराकर वृषभ, अश्व आदि भेजता गया और कृष्ण उन्हें मारते गये। आखिर उसने मल्लयुद्ध रचाया। समाचार सुनकर ग्वालबालोंके साथ कृष्ण-बलभद्रभी वहां आए और बात ही बातमें दोनों मल्लोंको दोनों भाइयोंने मार डाला। यह अपमान देखकर कंसने चिल्लाकर कहा—अरे सुभटों पकड़ो! पकड़ो! ये ही मेरे दुश्मन हैं। बस, पापी चिल्ला ही रहा था कि कृष्णने दौड़कर उसको भी पकड़ लिया और पृथ्वी पर पछाड़कर यमके द्वार भेज दिया। फिर कंसके पिता राजा उग्रसेनको (जो कंसने कैद कर रखा था) मुक्त बनाकर मथुराका राज्य दिया एवं उनकी सुपुत्री सत्यभामासे विवाह करके वे सपरिवार सौरिपुर आ गये। इस समय यादव हर्षसे फूले नहीं समा रहे थे।

फरियाद

इधर कंसकी महारानी रोती-पीटती अपने पिताके पास गई और उसने कृष्णके द्वारा कंसके मारे जानेकी बात कही। बात सुनते ही राजा जरासन्धने वैर का बदला लेनेके लिए अपने पुत्र कालियकुमारको ससैन्य भेजा। वह सौरिपुर आया तो यादव वहां नहीं मिले। पूछने पर पता लगा कि वे महाराज जरासन्धके साथ वैमनस्य होनेकी वजह से शहर छोड़कर सौराष्ट्रकी तरफ भाग गये हैं। बस, कालियकुमार उनके पीछे-पीछे ही गया। जाते-जाते बहुत कम अन्तर रह गया, तब यादवोंकी कुलदेवीने कृत्रिम चिताएं बनाकर कालियकुमारसे कहा कि यादव तेरे भयसे

जलकर पातालमें चले गये। मैं तो उन्हें पातालसे भी निकालकर ले आऊंगा ऐसे कहकर वह कृष्णकी चितामें घुसा और देवीने उसे भस्मकर दिया।

द्वारका पुरीमें कृष्ण

यादव सानन्द सौराष्ट्र पहुंच गये। वहां श्री कृष्णके पुण्यों द्वारा इन्द्रके हुक्मसे वैश्रवण देवताने प्रत्यक्ष स्वर्ग जैसी द्वारका-नगरी बसाई और उसमें श्री कृष्ण राज्य करने लगे। उनके समुद्र-विजय आदि नौ तायें थे। श्री वसुदेवजी पिता थे। भगवान् अरिष्टनेमि आदि अनेक तायेके पुत्र भाई थे। श्री बलभद्र आदि अनेक विमातृज भाई थे। सत्यभामा, रुक्मिणी आदि सोलह हज़ार रानियां थीं। प्रद्युम्न आदि अनेक पुत्र थे। कुन्ती-माद्री दो बुआएं थी, उनमें कुन्तीके पुत्र महारथी पाण्डव थे, जिनके लिए महाभारतमें उन्होंने खुद रथ चलाया था। माद्रीके पुत्र महाराज शिशुपाल थे, जिनको जरासन्धके युद्धमें उन्होंने अपने हाथोंसे मारा था। उनके परिवारका पूरा वर्णन करना बहुत मुश्किल है।

जरासन्धवध

कृष्णादि यादवोंको जरासन्ध अबतक मृतक ही मानता था, किन्तु व्यापारियों द्वारा जीवित सुनकर समुद्रविजयसे दूतके साथ कहलवाया—या तो राम-कृष्णको हमें दे दो या लड़ने आ जाओ। समाचार सुनते ही राम-कृष्णको आगे करके क्रुद्ध-यादव युद्धार्थ रवाना हो गये। भीषण संग्राम हुआ, श्री कृष्णके हाथसे जरासन्ध

मारा गया और देवों-मनुष्योंने मिलकर राम-कृष्णको त्रिखंडाधीश नौवें बलदेव-वासुदेव घोषित किया एवं सोलह हजार राजा और बारह हजार देवता उनकी सहर्ष सेवा करने लगे। श्री कृष्णने कुमार-अरिष्टनेमिका विवाह करने के लिए काफी धूम-धाम की, लेकिन नहीं हो सका। उन्होंने दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त किया और बाईसवें तीर्थंकर बनकर दुनियांके कल्याणार्थ गांवों-नगरोंमें विहरण किया। श्री कृष्ण उनके परम श्रद्धालु भक्त थे। एकदा प्रभु द्वारकामें पधारे, कृष्ण दर्शनार्थ गये और वाणी सुनकर पूछने लगे—नाथ! इस देव-निर्मित द्वारकापुरीका क्या होगा और मेरी मृत्यु किस तरह होगी? भगवान्ने फरमाया-कृष्ण! मदिरापानके दोषसे द्वैपायन-ऋषि द्वारा इसका नाश होगा तथा विमातृज भाई जराकुमारके हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी।

मदिराका बहिष्कार

प्रभुकी बात सुनकर कृष्णने प्रलयंकारिणी मदिराके उत्पादन पर पूरा-पूरा प्रतिबन्ध लगाया और जो थी उसे जंगलमें डलवाकर नगरमें उद्घोषणा करवा दी कि कोई मदिरापान मत करो और त्याग-वैराग्य एवं तपस्यामें लीन बनकर आत्मकल्याण करो। विनाश बहुत ही समीप है, जिस किसीको भी संयम लेना हो अभी ले लो। पिछली चिन्ता मत करो। मैं सबकी सम्भाल कर लूंगा। इस उद्घोषणाने नगरमें बहुत त्याग-वैराग्य बढ़ा। लाखों नर-नारियोंने प्रभुके पास दीक्षा स्वीकार की। (कृष्णकी महारानियां, रुक्मिणी आदि महारानियां, पुत्र एवं पारिवारिक

जन भी शामिल थे।) कृष्णने इस समय धर्मदलालीका वड़ा भारी लाभ उठाया।

भवितव्यता नहीं टलती

एक दिन यादवकुमार क्रीड़ा करने वनमें गये और मदिरा पीकर उन्मत्त हो गये। शहरमे आते समय द्वीपायन-ऋषिको तपस्या करते देख कर वोले—अरे मारो-मारो! यही है अपने शहरका नाश करनेवाला। वस, फौरन धक्काधूम करने लगे और ऋषिको नीचे पटककर कांटोंमे खूब घसीटा एव अनेक दुर्वचन सुनाए। क्रुद्ध होकर ऋषिने द्वारकादहन का संकल्प कर लिया। पता पाकर कृष्ण–वलभद्रने आकर वहुत अनुनय-विनय की। ऋषिने आखिर मात्र उन दोनों भाईयोंको छोड़नेका वचन दिया और वे रोते-रोते हार कर घर आ गए।

द्वारकादहन

इधर द्वैपायन-ऋषि प्राणत्याग कर अग्निकुमार देवता वना। ज्ञानसे पूर्व वैर का स्मरण करके द्वारकाको भस्म करने आया, किन्तु आयंबिल-उपवासादि तपस्याके प्रभाव से उसका वल न चला। छिद्र देखते-देखते वारह वर्ष वीत गये। भावीवश लोगोंने तपस्या को विल्कुल छोड़ दिया एव शत्रुदेवको मौका मिल गया। वह भीषण आग वरसाने लगा, जिससे शहर स्वाहा होने लगा और हा-हा की प्रवल ध्वनि पसरने लगी। उस समय कोई किसीकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं था।

माता-पिता भी न बचे

अपने माता-पिता (रोहिणी, देवकी और वसुदेव) को बचानेके लिए रथमे बिठाकर हरि-हलधर ज्यों ही दरवाजे के नीचे आए; देवताने उन्हे वहीं रोक दिया और दरवाज़ा गिराकर माता-पिताको मार दिया। तीनों ही उत्तम जीव अनशन करके स्वर्गमें गये। रोहिणी-देवकी आगामी चौबीसी मे तीर्थंकर होंगी।

जो दिव्य-नगरी इन्द्रके हुक्मसे वैश्रवणदेवताने बसाई थी, भावीवश एक तुच्छ देवता उसको भस्म कर रहा है और कृष्ण-बलभद्र देख-देख कर रोरहे हैं। पर कुछ नहीं कर सकते, इसी लिए तो कहा है विचित्रा कर्मणा गति!

पाण्डवमथुराकी तरफ़

अब क्या करना? कहां जाना? कुछ भी समझमे नहीं आता। आखिर दोनों भाइयोंने पाण्डवमथुराकी तरफ़ प्रस्थान किया, रास्तेमे भूख लगी। राम हस्तिकल्प पुरमे गये (जहां दुर्योधन का पुत्र राजा था) और हलवाईके यहांसे अपनी नामाङ्कित मुद्रिका देकर कुछ खाना खरीदा। रामका नाम देखकर उसने राजाको खबर दी। राजा सेना लेकर आया। दरवाजें बन्द कर दिए एवं बलभद्रको रोक लिया। पता पाते ही कृष्णने लात मारकर दरवाजें तोड़ दिए और भाईको छुड़ा लिया। फिर खाना खाकर कौशाम्बीके वनमें आए। कृष्णको प्यास लगी। राम पानी लेने गये, लेकिन उनको भावीवश पानी नहीं मिला!

तीर लग गया

कृष्ण वृक्षके नीचे पैरके ऊपर पैर रखकर सो रहे थे। अचानक तीर लगा और वे चौंककर बोले-कौन है ? देखा तो जिसने भाईकी रक्षाके लिए बनवास लिया था वही भाई जराकुमार सामने खड़ा-खड़ा रो रहा है और माफी मांग रहा है। कृष्णने उसको सान्त्वना देकर पाण्डवोंके पास भेज दिया। अब जो तीर लगा था उससे भयंकर पीड़ा होने लगी एवं उसी कारणसे श्रीहरिके प्राण छूट गये। अजब है कर्मोंका खेल, जिनके आगे देवता खड़े रहते थे, उनको अन्त समय पीनेको पानी तक नहीं मिला।

रामकी दीक्षा

कहींसे खोजकर श्री बलभद्र पानी लेकर आए, लेकिन आगे दीपक बुझ चुका था। काफी आवाजें देने पर भी कृष्ण न बोले। फिर भी वे मोहवश कुछ नहीं समझे और छः महीनों तक उनको उठाए फिरते रहे। आखिर देवोंने समझाया, तब शरीरका संस्कार किया और दीक्षा लेकर वनमे ध्यान करने लगे। जब-कभी वहां भिक्षा मिलती तो ले लेते अन्यथा भूखे ही रहते, लेकिन शहरमें न जानेका संकल्प कर लिया था। वहां उनको जातिस्मरणज्ञानवाला एक हिरण मिल गया था। वह भिक्षाकी दलाली करता रहता था।

तीनों की सद्गति

एक दिन एक बढ़ईके रोटियां आई थीं। मृगके साथ मुनि

वहां गये एवं तक्षक उनको सहर्ष रोटियां देने लगा। मुनि ले रहे हैं, सुथार दे रहा है और हिरन उसकी प्रशंसा कर रहा है कि धन्य है उस दाताको, जो ऐसे मुनिको शुद्ध भिक्षा दे रहा है। मैं भी यदि मनुष्य होता तो दान देकर अपनेको कृतार्थ करता। ऐसे सोच ही रहा था कि हवाका एक जोरदार झोंका आया, उससे वृक्षकी एक डाली टूट कर उन तीनों पर गिरी और सद्भावनामें मरकर तीनों ही ब्रह्मलोकमें महर्धिक देवता हो गये।

प्रसङ्ग ग्यारहवां

धधकते-अङ्गारे

धन्य हैं गजसुकुमाल मुनि, जिन्होंने दहदहाते-अङ्गारे डाल देने पर भी अपना सिर नहीं हिलाया और मुँहसे आह तक नहीं की। देखिए ज़रा-सा त्तमाके आदर्शमें अपना मुँह।

राजमाता देवकीके घर एक दिन भित्तार्थ दो मुनि आए। देवकीने भक्तिपूर्वक उन्हें केसरियामोदक बहिराये। थोड़ी देर बाद मुनि फिर आए, एवं सहर्ष लड्डू देकर उनका सम्मान किया। लेकिन तीसरी वार आने पर उससे रहा नहीं गया और लड्डू देकर ऐसे कहने लगी कि मुझे खेद है। जो मेरे शहरमें मुनियों-को पूरी भित्ता नहीं मिलती! अन्यथा एक ही घरमे तीसरी वार आनेका कष्ट आपको क्यों करना पड़ता?

मुनि बोले—बहिन! हमतो पहली वार ही आए हैं, किन्तु समान रूप देखकर तू हमें पहचान नहीं सकी, ऐसा प्रतीत होता है। हम छहों भाई भद्दिलपुरनिवासी नागसेठ एवं सुलसा सेठानीके पुत्र हैं। विवाहके बाद नेमिप्रभुकी वाणी सुनकर हम साधु बन गये और छठ-छठ तपस्या करते हुए प्रभुके साथ विचर रहे हैं। मुनिकी बात सुननेसे देवकीको कंस द्वारा मारे गये अपने छहों पुत्र याद आ गए और वह फौरन भगवान्के पास जाकर अपने मृत-पुत्रोंके विषयमें पूछने लगी। प्रभुने कहा—ये छहों पुत्र तेरे ही हैं। कंसके मार देने पर भी जीवित रह गये।

देवताने इनको मृतवत्सा सुलसाके यहां रख दिया था और सुलसाके मृतपुत्र तेरे पास रख दिए थे। अतः कंसने जो मारे थे, वे पहलेसे मरे हुए ही थे। देवकीके मनमें अब तो हर्षका पार ही न रहा। पुत्रोंके दर्शन किए, उस समय उसके स्तनोंमें से दूधकी धारा निकल पड़ी।

चिन्तातुर देवकी

दर्शन करके देवकी घर तो आ गई, लेकिन चित्तमें चैन नहीं रहा। पुत्रोंकी बाल्यलीला देखनेके लिए उसका दिल तड़फने लगा एवं वह चिन्ताके समुद्रमें डुबकियों लगाने लगी। श्रीकृष्ण दर्शनार्थ आए और चिन्ताका कारण पूछने लगे। तब सारी बात सुनाकर माताने कहा—वत्स! कुतियों, बिल्लियां और चिड़ियां भी अपने बच्चोंका लाड़-प्यार करतीं हैं, किन्तु मैं तो उनसे भी निम्न श्रेणीमें हूँ, जो सात-सात पुत्रोंको जन्म देकर भी उनकी बाल्यलीला नहीं देख सकी। धिक्कार है मेरे मातृ-जीवनको। बेटा! दुःखसे कलेजा फटा जा रहा है, पर क्या करूँ! कर्मोंके आगे कोई जोर नहीं चलता!

देवाराधन

श्रीकृष्णने माताको सान्त्वना दी और तेला करके देवताका स्मरण किया। वह प्रकट हुआ। श्रीकृष्णने छोटे भाईकी याचना की, तब देवताने कहा— कि भाई तो हो जाएगा, पर घरमें नहीं रहेगा। ऐसे कह कर देवता अन्तर्धान होगया और श्रीकृष्णने खुशखबर सुनाकर माता को सन्तुष्ट किया। कुछ समयके बाद

देवकीके उदरसे सुन्दर पुत्रका जन्म हुआ। महोत्सव करके गजसुकुमाल नाम रखा। माता उसको लाड़ लड़ा कर अपनी मनोकामना पूर्ण करने लगी। कुमार पढ़-लिखकर क्रमशः यौवनमें आए। श्रीकृष्ण उनके लिए सुन्दर कन्याएँ इकट्ठी करने लगे एवं विवाहकी तैयारियां होने लगीं। इधर अचानक भगवान् अरिष्टनेमिका पदार्पण हुआ। कृष्ण दर्शनार्थ गये। लघुभ्राता भी साथ हो गये। हरिने देव वाणीका स्मरण करके उन्हें रोकना तो चाहा, लेकिन वे नहीं रुके और प्रभुके समवसरणमें उपस्थित हो गये।

वैराग्य

प्रभुने ज्ञानका ऐसा मेघ बरसाया, जिससे गजसुकुमाल तो संसारसे उद्विग्न होकर दीक्षा लेनेको तैयार ही हो गये। दीक्षाकी बात सुनकर यादव-परिवारमें कोलाहल मच गया। माता बेहोश हो गई। श्रीकृष्णने बहुत-बहुत कहा, किन्तु कुमार तो टससेमस भी नहीं हुए। आखिर माता देवकीने आज्ञा दी और बड़ी धूमधामसे गजसुकुमालने नेमि प्रभुके पास दीक्षा स्वीकार की।

श्मशानमें ध्यान

दीक्षा लेते ही गजमुनिने प्रभुसे मुक्तिका सीधेसे सीधा रास्ता पूछा, तब प्रभुने श्मशानमें ध्यान करनेके लिए कहा। एवमस्तु कहकर मुनि उसी वक्त श्मशानमें जाकर आत्मध्यानमें रमण करने लगे। संध्याके समय सोमिल ब्राह्मण (जिसकी कन्या इनके विवाहार्थ रखी हुई थी) उधरसे आ निकला। मुनिको

देखते ही वह क्रोधसे लाल हो गया। लाल भी इतना हुआ कि मुनिके सिर पर मिट्टीकी पाल बांध कर धगधगते-अङ्गारे डाल दिए। खिचड़ीकी तरह सिर सीझने लगा एवं घोर वेदना होने लगी, किन्तु मुनिने सिरको हिलाया तक नहीं। वे परम पवित्र शुक्लध्यानमें लीन हो गये। बस, सिर फटनेके साथ ही कर्मोंके बन्धन भी टूट गये और क्षमाके आदर्श गजमुनि अजर-अमर एवं अविचल मोक्षमें पधार गये।

प्रसङ्ग बारहवां

लड्डुओंके साथ कर्मोंका चूरन

हंसते-हंसते बेपरवाहीसे कर्मोंका कर्ज़ कर तो हरएक लेते हैं, लेकिन उसको सहर्ष चुकानेवाले साहूकार तो ढढणमुनि जैसे कोई एक ही होंगे।

अजब अभिग्रह

महाराज कृष्णके ढढणा नामकी एक रानी थी और उसके पुत्र थे श्री ढढणकुमार। भगवान् अरिष्टनेमिका उपदेश सुनकर उन्होंने दीक्षा ले ली और ऐसा विचित्र-अभिग्रह किया कि मैं दूसरोंका लाया हुआ आहार नहीं करूंगा और मेरा लाया हुआ भी मेरे लिए वही भोज्य होगा, जो मेरी लब्धिसे मिलेगा।

ढंढणमुनि भगवान्के साथ ग्रामों-नगरोंमें विचरते और प्रतिदिन गोचरी जाते, लेकिन शुद्ध-आहारका संयोग नहीं मिलता। कहीं दरवाज़ा बन्द मिलता, तो कहीं रसोई बन्द मिलती। कहीं रसोई बनी हुई नहीं मिलती, तो कहीं रसोई उठी हुई मिलती। कहीं स्त्रियोंके सिर पर पानीका घड़ा मिलता, तो कहीं कोई स्त्री सब्जी बनाती हुई मिलती। कोई बच्चोंको स्तन्य पिलाती मिलती, तो कोई बच्चोंको नहलाती मिलती तथा कोई रोटी देते समय फूंक मार देती, तो किसीके सचित्तका संघट्टा हो जाता। इस प्रकार किसी न किसी तरह ढंढणमुनिको भिक्षा मिलनेमें अड़चन लग ही जाती। फिर भी मुनिके चेहरे पर उदासीनता या खिन्नताका निशान तक नहीं मिलता एवं वे हर समय प्रसन्नवदन ही दिखाई देते थे।

श्री हरिका सवाल

एकदा अरिष्टनेमिभगवान् द्वारका आए, श्री हरि दर्शनार्थ गये और वाणी सुनकर पूछा कि अठारह हजार साधुओंमें सर्वोत्कृष्ट कौन है ? प्रभु बोले—ढंढणमुनि सर्वोत्कृष्ट है। छः महीनोंसे उसने पानी तक नहीं पीया और आज उसको केवल-ज्ञान होनेवाला है। वह तुझे जाते समय रास्तेमें ही मिल जायगा। बस, महाराज कृष्ण चले एवं भिक्षार्थ फिरते हुए ढंढणमुनि उन्हें मिले। कृष्णने सवारी छोड़कर उन्हें सविधि वन्दना की। यह देखकर एक सेठने उनको बुलाकर भिक्षामें लड्डू दिए और मुनि लेकर प्रभुके पास आए।

प्रभु बोले—वत्स ! ये लड्डू कृष्णकी लब्धिके हैं क्योंकि कृष्णको वन्दना करते देखकर ही सेठने तुझे दिए थे, इसलिए तेरे अभोज्य हैं। मुनिने पूछा— प्रभो ! मैंने ऐसे क्या कर्म किए थे. जो मुझे शुद्धआहार नहीं मिलता ? प्रभुने कहा—तू पिछले जन्ममें एक बड़ा जमींदार था। तेरे पांच-सौ हल और हजार बैल थे। एक दिन खानेका समय होने पर भी तूने उन्हें नहीं छोड़ा अतः उनके भोजनका विच्छेद होनेसे तेरे अन्तरायकर्म बंध गया। इस समय तुझे वही कर्म फल दिखला रहा है। प्रभुकी आज्ञा लेकर मुनि कहीं ईंटोंके भट्टेमें लड्डू परठने गए और लड्डुओंको चूरते-चूरते शुक्लध्यानसे उन्होंने कर्मोंको भी चूर दिया एवं केवलज्ञान पाकर जन्म-मरणसे मुक्त हो गये। धन्य है उनके धैर्यको, शौर्यको और दृढ़प्रतिज्ञताको।

प्रसङ्ग तेरहवां

कौरव–पाण्डव

सभी जानते हैं कि जन्मधारीको एक दिन अवश्य मरना पड़ता है। यदि यह बात सही है, तो फिर न्यायमार्गको छोड़कर जुल्म क्यों किया जाता है? किसीको धोखा क्यों दिया जाता है? दूसरोंकी सम्पत्ति क्यों हड़पी जाती है? कोर्टोंमें झूठे केस क्यों चलाए जाते हैं? क्या उक्त कार्य करनेवालोंने महाभारत नहीं पढ़ा? अन्यायी दुर्योधनकी दुर्दशा नहीं सुनी?

वे कौन थे?

हस्तिनापुरमें महाराज शांतनु राज्य करते थे। उनके दो रानियाँ थीं। एक गंगा थी जिसके पुत्र भीष्मपितामह थे और दूसरी नाविकपुत्री सत्यवती थी, उसके दो पुत्र थे– चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य। विचित्रवीर्यके तीन पुत्र हुए–धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर। धृतराष्ट्र जन्मसे अन्धे थे। उनके गांधारी आदि आठ रानियां थीं और दुर्योधनादि सौ पुत्र थे (जो कौरव कहलाये) तथा एक दुःशला पुत्री थी जो राजा जयद्रथसे ब्याही थी। पाण्डु राजाके दो रानियां थीं। कुन्ती और शल्य राजाकी बहिन माद्री। कुन्तीके तीन पुत्र थे– युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन (कर्ण दुनियाकी दृष्टिसे कुमारावस्थामे पैदा हुआ था अतः उसे पेटीमें बन्द करके गंगामें बहा दिया था और अधिरथ नामके बढ़ईने उसका

पालन किया था) तथा माद्रीके दो पुत्र थे- नकुल और सहदेव। पाण्डुके पुत्र होनेसे वे पांचों पाण्डवके नामसे प्रसिद्ध हुए।

बचपनसे ही वैर

कौरव-पाण्डव साथ ही रहते थे और बाल्यलीला करते थे। भीम विशेष बलवान होनेसे दुर्योधनके भाइयोंको प्रेमवश खेल-कूदमें खूब ही पटकता-पछाड़ता था, किन्तु दुर्भावना नहीं थी। फिर भी दुर्योधन देख-देख कर जलता ही रहता था। कुछ बड़े होनेके बाद वे सब कृपाचार्य एवं द्रोणाचार्यके पास पढ़ने लगे। कर्ण भी वहीं आ गया और दुर्योधनका मित्र बन कर पाण्डवोंसे (खास करके अर्जुनसे) पूरी शत्रुता रखने लगा। द्रोणाचार्यकी कर्ण तथा अर्जुन विशेष भक्ति करते थे, फिर भी उन्होंने अर्जुन-से अधिक प्रसन्न होकर उसे अद्वितीय-बाणावलि बनाया और राधावेध सिखाया।

द्रौपदीका स्वयंवर

धृतराष्ट्र जन्मान्ध होनेसे महाराज पाण्डु राज्य करते थे। कांपिल्यपुरपति राजा द्रुपदकी पुत्री द्रौपदीका स्वयंवर हुआ। अनेक राजे-महाराजे आए। अर्जुनने राधावेध किया। एवं द्रौपदीने उनके गलेमें वरमाला पहनाई। किन्तु वह पूर्वकृत-निदानवश पांचोंके गलेमें दीखने लगी। सर्वसम्मतिसे उन पांचोंके साथ द्रौपदीका विवाह हुआ। परस्पर कलह न हो इसलिए नारदके पास पाण्डवोंने प्रतिज्ञा कर ली कि द्रौपदीके महलमें एकके होते दूसरा नहीं जाएगा। यदि कोई भूलसे चला जाएगा

तो उसे १२ वर्ष तक वनवास भुगतना पड़ेगा।

एक दिन अर्जुनसे भूल हो गई और वह १२ वर्षके लिए वनमें गया। वहां उसने अनेक विद्याएँ प्राप्त कीं एवं द्वारका जाकर कृष्णकी बहिन सुभद्रासे विवाह किया। सुभद्राका पुत्र वीर अभिमन्यु हुआ।

युधिष्ठिरको राजगद्दी

वनवास भोगकर अर्जुन घर आया। महाराज-पाण्डुने योग्य समझ कर युधिष्ठिरको राज्य दिया। अवसरज्ञ-युधिष्ठिर-ने भाई दुर्योधनको इन्द्रप्रस्थका राज्य देकर सन्तुष्ट किया। भीमादि चारों भाई दिग्विजयार्थ चारों दिशाओंमें गए और अनेक नरेश उनके आज्ञाकारी बने।

कलहका प्रारम्भ

द्रोपदीके पांच पुत्र हुए। सुभद्राकी कुक्षीसे अभिमन्युने जन्म लिया। उसके जन्मोत्सव पर अद्भुत सभामण्डप बनाया गया और अनेक नरेश बुलाए गए। पाण्डवोंकी सम्पति देखकर दुर्योधन जलने लगा तथा सभा देखते समय द्रौपदीके द्वारा हास्य करने पर तो वह आगबबूला ही हो गया। पाण्डवोंका पतन कैसे हो? इस विषयमें मामा शकुनिसे सलाह करके धृतराष्ट्रादिकके निषेध करने पर भी उसने एक दिव्यसभा बनाकर सपरिवार धर्मपुत्रको बुलाया। उनके साथ बात ही बातमें जुआ खेलना शुरू कर दिया। शकुनिके पास दिव्य-पासे थे अत युधिष्टिर हारते गए और दुर्योधन जीतता गया।

द्रौपदीको भी दावमें

खज़ाना, गांव, नगर, भाई, द्रौपदी एवं स्वयंको भी उन्होंने आखिर दावमें लगा दिया और वे हार गए। दुर्योधनने द्रौपदीको राजसभामें नग्न करना चाहा, किन्तु उसके शीलके बलसे साड़ीमें से साड़ी निकलती ही गई। आखिर भीष्मपितामह आदि वृद्धोंने पापीको रोका और बारह वर्ष तक पाण्डवोंको वनवास जानेका निर्णय दिया वे खुदको भी हार गए। अतः तेरहवें वर्ष कहीं छिपकर रहना होगा— यह आदेश दुर्योधनने विशेषरूपसे दिया और पाण्डवोंने माना। साथ-साथ यह भी तय हो गया था कि वनवासके बाद राज्य वापस लौटा दिया जाएगा।

पाण्डव वनवासमें

कर्मकी अजब महिमा है, जिसने धर्मपुत्र-जैसे धर्मिष्ठोंका भी घरबार छुड़वा दिया। पांचों पाण्डव, कुन्ती और द्रौपदी वनमें गए। द्रौपदीके पुत्रोंको उनका मामा धृष्टद्युम्न ले गया एवं सुभद्रा और अभिमन्युको श्रीकृष्ण ले गए। वनवासी बनाकर भी दुर्योधन सन्तुष्ट न हुआ। वारणावतनगरस्थ लाक्षागृहमें रख कर उन्हें भस्म करना चाहा, किन्तु चाचा विदुरकी कृपासे सातों जीवित बच गए और उनके बदले दूसरे सात जीव मारे गये। वनमें फिरते समय भीमने हिडम्ब एवं बक राक्षसको मारा तथा हिडम्बा राक्षसीसे विवाह किया, उसका पुत्र वीर घटोत्कच हुआ।

दुर्योधनकी दुष्टता

लाक्षागृहसे बचे सुनकर दुर्योधन गोकुल देखनेके बहाने फौज़ लेकर पाण्डवोंको मारने वनमें गया, किन्तु वहाँ खुद ही पकड़ा गया और फिर उसे वीर अर्जुनने छुड़ाया। पापीने मौका पाकर कृत्या राक्षसीको भिजवाया, लेकिन पुण्योंसे पाण्डव बच गए, प्रत्युत वह भेजनेवाले सुरोचन पुरोहितको खा गई। ऐसे ही अनेकों कष्टोंका सामना करते-करते बारह वर्ष बीत गए एवं अब वे गुप्तरूपसे विराटनगरमें तेरहवां वर्ष व्यतीत करने लगे। धर्म-पुत्र पुरोहित थे, भीम रसोईदार थे, अर्जुन बृहन्नट (नपुंसक) बनकर राजकन्या उत्तराको पढ़ाते थे। नकुल-सहदेव अश्वरक्षक एवं गोरक्षकके रूपमें काम करते थे। द्रौपदी दासीके रूपमें महारानीके पास रहती थी एवं उसका नाम सैरन्ध्री था।

कीचक और मल्लका बध

महारानीका भाई राजा कीचक द्रौपदीसे कुछ छेड़-छाड़ करने लगा। मौका पाकर द्रौपदीके रूपसे भीमने उसको पृथ्वी पर पछाड़ कर मार दिया। इधर पाण्डवोंका पता लगाने एक मल्ल भेजा गया। उसको कुश्ती करके भीमने खत्म कर दिया। फिर दुर्योधनने गौओंकी चोरी की, उसमें भी पाण्डवों द्वारा कौरवोंकी काफी मरम्मत हुई और उन्हें शर्मिंदा होकर भागना पड़ा।

श्रीकृष्ण दूतके रूपमें

तेरहवां वर्ष बीतने पर पाण्डव प्रकट हो गए। कृष्ण-द्रुपद

आदि स्वजन मिलने आए। राजकुमारी उत्तरासे वीर अभिमन्यु-का विवाह किया गया और आनन्द-मंगल मनाए गए। फिर श्रीकृष्णके आग्रहसे पाण्डव द्वारका आए एवं अर्जुनके सिवा चारों भाइयोंको दशार्होंने चार कन्याएँ दीं। परामर्श करके श्रीहरिने दुर्योधनके पास दूत भेजकर कहलवाया कि तेरे कथनानुसार पाण्डवोंने तेरह वर्ष व्यतीत कर दिए हैं, अब इनका राज्य लौटा कर अपने वचनका पालन कर। दुर्योधन नहीं माना, तब श्रीहरि खुद ही दूत बन कर उसे समझाने गए और यहां तक कह दिया कि पाण्डवोंको मात्र पांच गांव ही दे दे। किन्तु अभिमानी बोला। सुईके अग्रभाग जितनी जमीन भी मैं लड़े बिना नहीं दूंगा।

रुष्टमान श्रीहरि

कृष्ण रुष्ट होकर चलने लगे तब भीष्मादि वृद्धोंने पैर पकड़ कर उनसे किसी भी पक्षसे न लड़नेका अनुरोध किया। कृष्णने मान लिया और कहा कि मैं इस युद्धमें शस्त्र धारण नहीं करूंगा। जाते समय उन्होंने कर्णको अन्दरका भेद बता कर फूट डालनेकी काफी कोशिश की, लेकिन वह तो दुर्योधनके लिए पहलेसे ही बिक चुका था। कृष्ण द्वारका आए और उनके कथनानुसार पाण्डव सात अक्षौहिणी सेना लेकर कुरुक्षेत्रमें पहुंचे तथा द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नको सेनापति बना कर कौरवोंकी प्रतीक्षा करने लगे।

इधर भीष्मके सेनापतित्वमें द्रोण, कृप, कर्ण, शल्य, भगदत्त आदि वीरोंसे परिवृत ग्यारह-अक्षौहिणी दलयुक्त दुर्योधन

भी उपस्थित हुआ। अपने पितामह, गुरु, मामा एवं भाईयोंको देखकर अर्जुन रथके पीछे आ बैठा एवं श्रीकृष्णसे कहने लगा कि मै तो नहीं लड़ूंगा। इस तुच्छ पृथ्वीके टुकड़ेके लिए गोत्रहत्या करते मेरा दिल कांप रहा है।

श्री हरिकी प्रेरणा

क्षत्रियधर्मके अनुसार अन्यायीको मारना कोई दोष नहीं, ऐसे कह कर श्रीकृष्णने अर्जुन को उत्साहित किया एवं कौरवों-पाण्डवोंका युद्ध शुरू हुआ। नौ दिन तक भीष्म-पितामहने पाण्डव सेनाको खूब मारा। तब कृष्णकी सलाहसे शिखण्डीको आगे करके दसवें दिन अर्जुनने उनको गिरा दिया। ग्यारहवे दिन द्रोणाचार्य सेनापति बनकर पाण्डवोंसे खूब लड़े। बारहवे दिन अर्जुन ससप्तकों त्रिगत देशके सुशर्मा आदि वीरोंसे लड़ने गया, इधर राजाभगदत्त पाण्डवोंमे घुसा और मारा गया। तेरहवे दिन गुरुद्रोणने चक्रव्यूह रचा, अभिमन्यु अनेक वीरोंके साथ उसमे प्रविष्ट हुआ। कर्ण, द्रौण, शल्य, कृप, अश्वत्थामा आदिने उस वीरको बुरी तरहसे घेर लिया एवं जयद्रथने उसका सिर काट लिया। चौदहवें दिन क्रुद्ध अर्जुनने जयद्रथको मार दिया, तब न्यायका भंग करके द्रोणने रातको अचानक हमला किया। उसमे कर्णने शक्तिसे घटोत्कचको मारा और द्रौणने विराट एवं द्रुपदके प्राण लिए।

आखिरी चार दिन

पन्द्रहवें दिन द्रोणको मरवानेके लिए श्री हरिकी सलाहसे

धर्मपुत्रने अश्वत्थामा मृतः नरो वा कुंजरो वा ऐसे असत्य बोला। पुत्र-वध सुनकर द्रोणने शस्त्र फेंक दिए और मौका पाकर शीघ्र ही धृष्टद्युम्नने उन्हें मारकर बापका वैर ले लिया। सोलहवें दिन कर्णके सेनापतित्वमें दुःशासनको भीमने मारा। क्रोधारुण-कर्ण सत्रहवें दिन राजा शल्यको सारथी बना कर अर्जुनको मारने दौड़ा, किन्तु उसका रथ जमीनमें घुस गया। ज्योंही उसे वह निकालने लगा, अर्जुनने फौरन उसका सिर काट लिया। अठारहवें दिन शल्यके सेनापतित्वमें दुर्योधन आदि लड़ने आए। धर्मपुत्रने शल्यको, सहदेवने द्यूत खेलानेवाले पापी-शकुनि को एव भीमने दुर्योधनके अनेक भाइयोंको मौतके घाट उतार दिया। इस प्रकार अपनी सेनाका संहार देखकर दुर्योधन भाग कर एक तालाबमें घुस गया।

भीम और दुर्योधनका गदायुद्ध

पाण्डव फौरन वहां पहुंचे और कुलघाती-दुर्योधनको बाहर निकाल कर युद्धके लिए ललकारा। उसने भीमके साथ गदायुद्ध करना चाहा। दोनों वीर भिड़े और गदाएँ बिजलीकी तरह चमकने लगीं। आखिर कृष्णके संकेतसे भीमने जंघा पर गदा मारकर कौरवाधीशको गिरा दिया। फिर भी क्रोध शान्त न होनेसे वह उसके सिरमें लातें मारने लगा। यह अनुचित कार्य देखकर बलभद्र रुष्ट होकर चले गए, अतः पाण्डवोंसहित श्रीकृष्ण उन्हें मनाने गए एवं युद्ध भी खतम हो गया। इधर संध्या होनेके बाद दुर्योधन सेनामें लाया गया और उसको मृत-

प्राय देखकर सब रोने लगे। तब उसने कहा—हाय! हाय! पाण्डव जीते हैं और मैं मर गया। अगर उन्हें मरे देख लेता तो मेरे प्राण खुशीसे निकल जाते। ऐसे सुनते ही अश्वत्थामा आदिने रातको अचानक हमला करके धृष्टद्युम्न एवं शिखण्डी-को मारा तथा द्रौपदीके पांचों पुत्रोंके सिर काटकर अपने स्वामीके आगे लाकर रक्खे। बच्चोंके सिर देखकर दुर्योधनने कहा—अरे मूर्खों! इन बच्चोंको मारनेसे क्या है? मेरे दुश्मन पाँचों पाण्डव तो जीवित ही हैं। हाय! हाय! मेरी तकदीर ऐसी कहाँ! जो मैं उन्हें मरे देखूँ, ऐसे दुर्ध्यानमें मरकर पापी सप्तम नरकमें गया।

सात और तीन बचे

अठारह दिनके युद्धमें अठारह अक्षौहिणी सेना कटी। कहा जाता है कि पाण्डवपक्षके सात बचे—श्रीकृष्ण, सात्यकि एवं पांचों पाण्डव तथा कौरव-पक्षीय तीन बचे-अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा। देखो एक दुष्ट दुर्योधनने सारे कुलका संहार कर दिया, इसीलिए तो कहा जाता है कि कुमाणस आया भला न जाया भला खैर! जो कुछ होना था वह हो गया, किन्तु कहा यही गया कि पाण्डवोंकी जीत हुई और कौरवोंकी हार।

राज्याभिषेक और देशनिकाला

श्रीकृष्णसहित विजयी-पाण्डव हस्तिनापुर आए। पिताजीके चरणोंमें सिर झुकाया। शुभ मुहूर्तमें धर्मपुत्रका पुनः राज्याभिषेक हुआ और वे सानन्द राज्य करने लगे। द्रौपदीका रूप सुनकर एकदा पद्मनाभ राजाने देवता द्वारा उसे मंगवा

लिया। पता पाकर पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण लवणसमुद्रको लांघ कर धातकीखण्ड पहुंचे और नरसिंहरूप धारकर द्रौपदीको छुड़ा लाए। किन्तु हास्यके वशीभूत गंगानदीमें नौका न भेजनेके कारण कृष्ण क्रुद्ध हो गए और पाण्डवोंको देशनिकाला देकर अभिमन्युके पुत्र परीक्षितको हस्तिनापुरका राजा बना दिया। श्रीकृष्णके कथनानुसार दक्षिणसमुद्रके किनारे पाण्डवमथुरा बसाकर वहां पाण्डव अपने दुःखके दिन व्यतीत करने लगे। समयानन्तर द्रौपदीके एक पुत्र हुआ जिसका पाण्डुसेन नाम रखा गया।

दीक्षा और निर्वाण

एक दिन अचानक जराकुमारने आकर द्वारकादहन एवं कृष्णमरणके समाचार सुनाए। श्रीहरि जैसे-महापुरुषका ऐसे मरण सुन कर पाण्डवोंको वैराग्य हो गया और अपने पुत्र पाण्डुसेनको राज्य दे कर द्रौपदीसहित पांचों भाइयोंने दीक्षा ले ली एवं कर्मोंका नाश करनेके लिए मास-मासखमण तपस्या करते हुए विचरने लगे। एकदा वे भगवान् अरिष्ट नेमिके दर्शनार्थ गिरनाचल जा रहे थे। रास्तेमें हस्तकल्पपुर आया। मुनि मास-खमणका पारणा करने तैयार हुए ही थे, इतनेमें पता मिला कि भगवानने अनशन कर लिया है। अब तो प्रभुके दर्शन करके ही पारणा करेंगे, ऐसी प्रतिज्ञा करके उन्होंने शीघ्र ही विहार कर दिया, लेकिन उनके पहुंचनेसे पहले ही भगवान् मोक्ष पधार चुके थे। दर्शन न होनेके कारण अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मुनियोंने

यावज्जीवनके लिये अनशन ले लिया। एक महीने का अनशन आया और अन्तमे केवलज्ञान पाकर पाँचों ही पाण्डव सिद्धगतिको प्राप्त हुए। इधर महासती द्रौपदी भी शुद्धसंयम पाल कर ब्रह्मदेवलोकमे गई।

प्रसङ्ग चौदहवां

द्रौपदीके पाँच पति क्यों ?

किसी जन्ममें द्रौपदी नागश्री ब्राह्मणी थी। उसने धर्मरुचि मुनिको कड़ुवे तुम्बेका शाक बहिराया एवं नरकमें गई। फिर संसारमें भ्रमण करती-करती एकदा वह सेठकी पुत्री सुकुमालिका हुई। फिर भी पापके उदयसे विषकन्या थी अत. विवाह होने पर भी उसके शरीरका स्पर्श न कर सकनेके कारण पतिने उसे छोड़ दिया। पिताने एक भिखारीके साथ दुबारा भी शादी की, किन्तु उसके अग्निरूप शरीरसे डरकर वह भी भाग गया अतः सुकुमालिका बापके घर ही अपने दुःखके दिन व्यतीत करने लगी।

दीक्षा और आतापना

एक दिन सेठके यहाँ भिक्षार्थ साध्वियां आईं। उसने अपना दुःख सुनाकर उनसे कोई पुरुषवशीकरण-मन्त्र पूछा। सतियोंने ऐसे मन्त्र बतानेमें इन्कार कर दिया और उसे धर्मोपदेश सुनाया। तब दुःखकी मारी वैराग्य पाकर वह साध्वी बन गई एवं शहरके बाहर बागमें जाकर सूर्यके सामने आतापना लेने लगी। गुरुआनीने ऐसे खुले स्थानमें तपस्या करना अनुचित समझकर काफी मनाही की, लेकिन वह नहीं मानी।

पांच पतिका निदान

एक दिन जहाँ वह तपस्या कर रही थी, वहाँ एक वेश्या

आई। उसके साथ पाँच-भोगी पुरुष थे, जो उससे भोगकी प्रार्थना कर रहे थे। साध्वीकी दृष्टि उन पर पड़ी और दिलमें विचार हुआ कि इसके पीछे पाँच-पाँच पुरुष पागल हो रहे हैं और मेरे पास एक भिखारी भी नहीं ठहरता। अगर मेरी तपस्याका फल हो तो अगले जन्ममें मुझे भी पाच पति प्राप्त हों। भोगकी तीव्र अभिलाषाके वश उसने यह निदान कर लिया। विराधक होकर मर गई एवं तपस्याके प्रभावसे दूसरे स्वर्गमे देवी बनी।

द्रुपद राजाके घर

सुकुमालिका स्वर्गसे च्यवकर द्रुपद राजाकी पुत्री द्रौपदी हुई। वर्ण काला था इससे वह कृष्णा भी कहलाई। इसका रूप-लावण्य अद्भुत और आकर्षक था। यौवन आने पर स्वयंवर हुआ, अर्जुनने राधावेध किया एवं द्रौपदीने उसके गलेमे माला पहना दी। पहनाई तो थी एक अर्जुनके गलेमें, किन्तु दिव्य प्रभावसे पांचोंके गलेमें दीखने लगी। दर्शकोंने शोर किया तब आकाशवाणीने कहा— भवितव्यतावश इसके पाँच पति ही होंगे। इतनेमें आकाशमार्गसे एक मुनि आए। एवं कृष्णादिके पूछने पर उन्होंने पिछले जन्मका सारा हाल सुनाया और फिर सर्वसम्मतिसे पांचों पाण्डवोंके साथ द्रौपदीका विवाह हुआ। अस्तु।

प्रसङ्ग पन्द्रहवां

भगवान् पार्श्वनाथ

थोड़ी-सी सेवा करनेवाले पर प्रेम और थोड़ा-सा कष्ट देनेवाले पर द्वेषका होना प्राणीमात्रके लिए स्वाभाविक-सा ही है। ऐसे आदर्शपुरुष तो पार्श्वनाथ भगवान् जैसे कोई विरले ही मिलेंगे जिन्होंने प्राण बचानेवाले नागराज-धरणेन्द्रको और मरणान्त-उपसर्ग करनेवाले कमठदेवको एक ही दृष्टिसे देखा।

आजसे लग-भग उनतीस-सौ वर्ष पूर्व तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथने वाणारसी नगरीमें राजा अश्वसेनकी महारानीश्री वामादेवीकी कुक्षिसे जन्म लिया था और उनका विवाह राजा प्रसेनजित्की सुपुत्री प्रभावतीसे हुआ था। एक दिन हजारों नगर निवासियोंको एक ही तरफ जाते देखकर उन्होंने अपने सेवकसे उसका कारण पूछा। उसने कहा- कमठ नामका एक बड़ा भारी तपस्वी आया है, वह शहरके बाहर पंचाग्निसाधना कर रहा है- ये सब लोग उसीके दर्शनार्थ जा रहे हैं।

श्री पार्श्वकुमार भी कुछ-एक मित्रोंके साथ वहां पधारे और उसकी हिंसात्मक साधना देखकर बोले— अरे हिंसाप्रिय तपस्वी-कमठ! धर्मका मूल अहिंसा है और तू धर्मके नामसे महा-हिंसा कर रहा है। देख! तेरे इस तपस्याके साधनभूत लक्कड़में एक विशालकाय● नाग-नागिनका जोड़ा जल रहा है, जिनका तुझे

●नोट— कई कथाकार एक नाग ही बताते हैं और मर कर उसका धरणेन्द्र होना मानते हैं।

पता तक नहीं है। प्रभुकी इस वाणीसे कमठ लाल होकर कहने लगा, राजकुमार! चले जाओ चुप-चाप, बोलोगे तो ठीक नहीं होगा। मैं धर्मका मूल एवं फूल सब कुछ जानता हूं, मुझे शिक्षा देनेका कष्ट न करो।

नाग-नागिनी का उद्धार

बस, बात ही बातमें विवाद बढ़ गया और प्रभुने सहस्रों नगरनिवासियोंके सामने वह लकड़ा चिराया तो उसमेंसे तड़फते हुए नाग-नागिनी निकले। दयालु भगवान्ने उनका उद्धार करनेके लिए श्री नमस्कार-महामन्त्र सुनाया एवं उन्होंने उसे श्रद्धापूर्वक सुन लिया। शुभ भावनासे मर कर वे दोनों नागकुमारोंके इन्द्र-इन्द्राणी धरणेन्द्र एव पद्मावती बन गये।

इस अनूठे दृश्यने वातावरणको बदल डाला। तापसके अनन्यभक्त भी उसे ठग, धूर्त और पाखण्डी कहने लगे। प्रभुने भी मौका पा कर उपदेश दिया— जैसे धौला-धौला सारा दूध और पीला-पीला सारा सोना नहीं होता, वैसे ही साधुके वेष वाले सारे साधु नहीं होते। फिर अहिंसाधर्मका मर्म समझाते हुए उन्होंने कहा— जिस धार्मिकसाधनाके लिए किसी भी प्रकारकी हिंसा की जाती हो, वास्तवमें वह साधना धर्मसाधना ही नहीं है। हिंसात्मक-साधनामें धर्म माननेवाले अज्ञानी एवं अनार्य हैं।

भगवान्का यह अनमोल ज्ञान सुनकर लोग काफ़ी-कुछ समझे और तापसको धिक्कारते हुए अपने-अपने घर चले गये।

कमठ शर्मिंदा होकर वहांसे चला गया, किन्तु उसको अपमानका दुःख इतना लगा कि वह आमरण-अनशन लेकर मरणको प्राप्त हो गया और तपस्याके बलसे मेघकुमार देवता बन गया। पूर्व-जन्मका स्मरण होते ही वह आग-बबूला होकर वैरका बदला लेनेके लिए हरसमय छल-छिद्र देखने लगा।

दीक्षा और उपसर्ग

इधर प्रभु तीस वर्ष गृहस्थाश्रम भोगकर संयमी बने एवं तपस्यार्थ वन में पधारे। मौका पाकर कमठ देवता आया और भयंकर भूत-पिशाच आदिका रूप बनाकर उपसर्ग करने लगा। मरणान्त-उपसर्ग करने पर भी प्रभुने अपने ध्यानको नहीं छोड़ा, तब देवता और भी क्रुद्ध हुआ तथा प्रलयकाल सा मेघ विकुर्वित करके मूसलाधार पानी बरसाने लगा। पानीमें भगवानका शरीर प्रायः डूब चुका था। ज्योंही पानी नाक तक पहुँचा, अवधिज्ञानसे जानकर शीघ्र ही नागराज धरणेन्द्रने आकर अपने इष्ट देवको ऊँचा उठा लिया। पानी बरसानेमें देवताने हद कर दी, फिर भी प्रभु तो ऊँचेके ऊँचे ही रहे। आखिर धरणेन्द्रका भेद पाकर कमठ घबराया एवं अपनी सारी माया समेट कर भगवानके चरणोंमें क्षमा मांगने लगा. लेकिन प्रभु तो अपने ध्यानमें लीन थे। उनके दिलमें न तो कमठके प्रति द्वेष था, और न अपने परमभक्त नागराजके प्रति राग था. अहा! कितना विचित्र था वह समताका दृश्य।

केवलज्ञान

शुक्लध्यानसे घातिककर्मोंका नाश करके चौरासी दिनके बाद प्रभुने केवलज्ञान पाया एव भाव--अरिहन्त बनकर चार तीर्थ स्थापित किये। उनके शासनकालमे सोलह हजार साधु हुए, अड़तीस हजार साध्वियाँ हुईं, एक लाख चौंसठ हजार श्रावक हुए और तीन लाख उनचालीस हजार श्राविकाएँ हुईं। प्रभु सत्तर वर्ष संयम पाल कर एक हजार मुनियोंके साथ सम्मेदशिखर पर्वत पर निर्वाणको प्राप्त हुए। पार्श्वनाथ प्रभुका स्मरण बहुत ही आनन्दकारी है, आचार्योंने इनके एकसे एक बढ़ते-चढ़ते अनेक स्तोत्र बनाए हैं, उनमें उपसर्गहर स्तोत्र एव कल्याणमन्दिर स्तोत्र बहुत ही प्रभावशाली है।

प्रसङ्ग सोलहवां

प्रदेशीके प्रश्न

स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप, आत्मा व परमात्माको माननेवाला आस्तिक होता है और न माननेवाला नास्तिक होता है। प्रदेशी श्वेताम्बिका-पति राजा नास्तिकोंका सरदार था। उसके दिलमें दयाका निशान तक नहीं था और मनुष्यको मारना उसके लिए तिनका तोड़नेके समान था। चित्त नामका विमातृज भाई उसका मन्त्री था, जो बड़ा भारी धर्मात्मा एवं आस्तिक था।

सावत्थीमें केशीस्वामी

एकदा कार्यवश राजमन्त्री सावत्थी नगरी गया। वहां श्रीपार्श्वनाथ भगवान्‌के संतानिक-शिष्य श्रीकेशीस्वामी धर्मप्रचार कर रहे थे, जो चतुर्ज्ञानधारी थे। पता लगने पर चित्त-प्रधानने उनका उपदेश सुना और श्रावकके व्रत ग्रहण किए। मन्त्रीने देश जाते समय गुरुजीसे श्वेताम्बिका नगरी पधारनेकी प्रार्थना की। लाभ समझ कर केशीस्वामी वहां पधारे और राजाके बागमें ठहरे। अवसर देखकर घोड़ोंकी परीक्षाके बहाने दीवान राजाको बागमें ले आया।

ये जड़-मूढ़-मूर्ख कौन हैं ?

राजाने दूरसे मुनियोंको देखकर पूछा-भाई ! ये जड़-मूढ़-मूर्ख कौन हैं ? इन्होंने मेरा सारा बाग रोक लिया, अब मैं कहां ठहरूं और कहाँ बैठूं ? मन्त्रीने कहा-ये जैनी साधु हैं एवं स्वर्ग, नरक, आत्मा व परमात्माको माननेवाले हैं। इनके मतमें जीव और

काया पृथक्-पृथक् हैं।

राजा मुनिके पास गया, किन्तु हाथ बिना जोड़े ही आत्मा-विषयक प्रश्न करने लगा। मुनि बोले-राजन्! विनय बिना ज्ञान नहीं आता। तूने बाहर तो हमें जड़-मूढ़-मूर्ख कहा और यहां आकर असभ्यतासे प्रश्न पूछ रहा है अतः तू हमारी जकातका चोर है। विस्मित नरेशने पूछा-महाराज! आपको मेरे कहे हुए अपशब्दोंका पता कैसे चला? मुनि बोले-मेरे पास चार ज्ञान हैं। राजा बहुत प्रभावित हुआ और मान गया कि ये सच्चे ज्ञानी हैं तथा इनका धर्म वास्तविक है, फिर भी जिज्ञासाके लिए कई प्रश्न किए।

१. राजा— यदि नरक है, तो मेरा दादा बहुत पापी था। अतः अवश्य नरकमें गया होगा, अब बतलाइये, वह मुझे आकर क्यों नहीं कहता कि पोता! धर्म कर?

गुरु— जैसे तेरी रानीसे व्यभिचार करनेवालेको स्वजनोंसे मिलनेके लिए तू थोड़ी भी छुट्टी नहीं देता, वैसे ही तेरे पापी दादेको यम यहां नहीं आने देते।

२. राजा— मेरी दादी धर्मात्मा थी अतः स्वर्गमे गई होगी, वह तो आकर कह सकती है?

गुरु— मनुष्यलोककी दुर्गन्धिके कारण नहीं आती।

३. राजा— मैंने चोरको मारकर कोठीमें रखकर बन्द कर दिया। समयानन्तर देखा तो उसमें कीड़े पड़ गये। वे कहांसे घुसे, कोठीमें छिद्र तो हुए नहीं?

गुरु— लोहेमे अग्निकायके रूपी शरीर घुसने पर भी छिद्र नहीं

होते, जीव तो अरूपी होते हैं, फिर उनके घुसनेसे कोठीमें छिद्र कैसे होंगे !

४. राजा— मैंने एक चोरको कोठीमें बन्द कर दिया, समयानन्तर देखा तो मरा हुआ मिला। अब कहिए जीव कहाँसे निकला ? रास्ता तो बन्द था।

गुरु— जैसे बन्द मकानमें बजाए गये ढोलका शब्द बाहर निकलता है, वैसे ही समझ लो।

५. राजा— आपके हिसाबसे जीव सब बराबर हैं, तो जवान-आदमीके समान बालक तीर क्यों नहीं चला सकता ?

गुरु— बालकके हाथ-पैर आदि शरीरके अवयव अपूर्ण हैं। क्या तुम नहीं जानते कि बाणविद्यामें निपुण पुरुष भी धनुषके उपकरण अपूर्ण होने पर तीर अच्छी तरह नहीं चला सकता।

६. राजा— एक बूढ़ा आदमी जवान जितना बोझा क्यों नहीं उठा सकता ?

गुरु— उसके अवयव जीर्ण हो गए, इसीलिए। क्या पुरानी-कावड़में युवक भी पूरा बोझा उठा सकता है !

७. राजा— एक दिन मैंने जीवित चोरको तोला और मार कर फिर तोला, किन्तु उसका बोझा पूर्ववत् रहा। कहिये क्यों नहीं घटा ?

गुरु— वायुके असंख्य शरीर निकलने पर भी रबड़के ढोलका

बोझा प्राय नहीं घटता, तो फिर अरूपी एक जीव निकलने पर बोझा कैसे घट सकता है ?

८. राजा— एक दिन मैंने काट-काट कर चोरके टुकड़े कर दिए, लेकिन निकलता जीव नजर क्यों नहीं चढ़ा ?

गुरु— तू लकड़हारे जैसा मूर्ख है। अरूपी जीव इन चर्म-चक्षुओंसे कैसे देखा जा सकता है ?

९. राजा— यदि सब जीव बराबर हैं तो शरीर छोटे-बड़े क्यों ?

गुरु— दीपकके प्रकाशकी तरह जीवका भी संकोच एवं विकासका स्वभाव है।

१०. राजा- महाराज ! आपकी बातें तो सच्ची हैं, किन्तु बाप-दादोंका धर्म कैसे छोड़ूं ?

गुरु— सच्चा धर्म समझकर भी अगर झूठको नहीं छोडेगा तो लोहवनिएकी तरह रोना पडेगा।

राजा बोला-गुरुदेव ! मै ऐसा मूर्ख नहीं हूँ। सबके सामने आपको गुरु बनाऊँगा एवं धर्म धारण करूंगा। राजा घर आया और दूसरे दिन रानी, पुत्र आदिको साथ लेकर उसनें जैनधर्म स्वीकार किया एव श्रावकके बारह व्रत ग्रहण किए। राज्यके चार भाग करके राजा छट्ठ-छट्ठ तपस्या करने लगा। स्वार्थपूर्ति न होनेसे रानीने तेरहवें वेलेके पारनेमे उसे जहर दे दिया। पता लग जाने पर भी राजाने रानी पर बिल्कुल क्रोध नहीं किया और अनशन करके सूर्याभ नामका महर्धिक देवता बना।

फिर दर्शनार्थ भगवान् महावीरके पास आया एव उसने

अद्भुत नाटकका प्रदर्शन किया। गौतमस्वामीने—यह पूर्वभवमें कौन था? ऐसे प्रभुसे पूछा, तब प्रभुने केशी और प्रदेशीका सारा विवरण सुनाया। (जो रायप्पसेणिय सूत्रमें वर्णित है।) एवं बतलाया कि यह सुर्याभ देवता भवान्तर महाविदेहक्षेत्रमें जन्म लेकर मोक्ष जाएगा।

प्रसङ्ग सत्रहवां

भगवान् महावीर

सच्चे वीर वही होते हैं, जो कष्टोंके समय भी औरोंका सहारा नही लेते। किसी कविने कहा भी है:—

जो तैराक हैं दरियाका किनारा नहीं लेते,
जो मर्द हैं गैरोंका सहारा नहीं लेते।

लेकिन ऐसे कहना जितना सरल है, काम पड़ने पर मजबूती रखना उससे लाखों गुणा कठिन है। कष्टोंके समय किसीका सहारा न लेनेवाले वीरोंमें भगवान् महावीर एक प्रमुख वीर थे। जैनजगतमें ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो उनका नाम नहीं जानता। इस अवसर्पिणीकालमे भगवान् महावीर चौबीसवें तीर्थंकर थे।

प्रभुने क्षत्रियकुण्डनगरमें चैत्र शुक्ला त्रयोदशीको माता त्रिशलाकी कुक्षिसे जन्म लिया था। पिता सिद्धार्थ राजा थे, बडे भाई नन्दीवर्धन व बड़ी बहिन सुदर्शना थी। जबसे महावीर माता त्रिशलाके गर्भमें आए तभीसे राज्यमे अन्न-धन आदि हर एक वस्तु बढ़ने लगी, इसलिए पिताने अपने पुत्रका नाम श्रीवर्धमानकुमार रखा। जन्मसमय इन्द्रादि देवोंने भी परम्परागतरीतिके अनुसार प्रभुका जन्म-महोत्सव किया।

बचपनमे आमलकी-क्रीडाके समय बल-परीक्षार्थ एक देवता अपनी पीठ पर बैठाकर प्रभुको आकाशमे ले गया, किन्तु मुक्का मारते ही रोता हुआ नीचे आ गया और क्षमा मांगकर वर्धमानको वीर नामसे सम्बोधित करने लगा।

पढ़ाईके समय इन्द्रने प्रभुसे व्याकरण-सम्बन्धी अनेक जटिल प्रश्न पूछे, उन्होंने उसी क्षण सबका समाधान कर दिया। कहा जाता है कि उन प्रश्नोत्तरोंसे एक व्याकरण बन गया, जो जैनेन्द्रव्याकरणके नामसे प्रसिद्ध है।

यौवन आने पर प्रभुने यशोदा नामकी राजकन्यासे विवाह किया। प्रियदर्शना नामक एक पुत्री हुई, जिसका पाणिग्रहण क्षत्रियकुमार जमालिके साथ हुआ। श्रीवर्धमानके माता-पिता भगवान् पार्श्वनाथके श्रावक थे, इसलिए प्रभु ज्ञात— (श्रावक) पुत्र भी कहलाए। उन्होंने बहुत वर्षों तक श्रावकधर्म पाला और अन्तमें अनशन करके बारहवें स्वर्गमें देवता हुए। माता-पिताका स्वर्गवास होने पर भगवान्की ●प्रतिज्ञा पूर्ण हुई और वे दीक्षार्थ तैयार हुए।

देवोंने प्राचीन परम्पराके अनुसार सुवर्णमुद्राएँ उपस्थित कीं। भगवानने एक वर्ष दान देकर देवों एवं मनुष्योंके सम्मुख संयम स्वीकार किया। तपस्यार्थ वनकी तरफ विहार करने लगे, तब इन्द्रने कहा-प्रभो! छद्मस्थ-अवस्थामें आपको उपसर्ग बहुत होंगे, इसलिए मैं आपकी सेवामें रह जाऊँ। प्रभु बोले-इन्द्र! ऐसे न तो कभी हुआ और न ही कभी होगा कि तीर्थंकर किसीका सहारा लेना चाहें। प्रभुकी अद्भुत साहसभरी-वाणी सुनकर

●नोट— गर्भावस्थामें माताके सुखके लिए हाथ-पैर न हिलानेसे सारे परिवारमें हाहाकार मच गया था और पावन हिलानेसे आनन्दका स्रोत बहने लगा था। उस समय मोहवश प्रभुने प्रतिज्ञा की थी कि माता-पिताकी विद्यमानतामें मैं दीक्षा नहीं लूंगा।

इन्द्रादि देवोंने कहा— आप घोर परीषहोंको समभावसे सहन करेंगे अतः आपका नाम महावीर उपयुक्त है। ऐसे कहकर प्रशंसा करते हुए इन्द्रादि सब अपने-अपने स्थान गए एवं प्रभु कर्मोंका नाश करनेके लिए तीव्र तपस्या करने लगे। तपस्या कमसे कम दो उपवास और ऊपरमें पक्ष, मास, दो मास, तीन मास, चार मास यावत् छः मास तक भी की। छद्मस्थकाल भगवान्ने प्रायः तपस्यामें ही व्यतीत किया। बारह वर्ष तेरह पक्षोंमे केवल ग्यारह महीने बीस दिन आहार लिया और ग्यारह वर्ष छः महीने-पच्चीस दिन निराहार रहे। तपस्यामें उन्होंने पानी कभी नहीं पिया और प्रायः ज्ञान, ध्यान, मौन एवं योगासन ही करते रहे। साढ़े बारह वर्षोंमें मात्र एक मुहूर्त नींद ली। प्रभुने तपस्याके साथ-साथ बड़े-बड़े अभिग्रह किए, उनमे तेरह बोलका अभिग्रह बहुत ही उत्कृष्ट था, जो पाँच महीना पच्चीस दिनके बाद सती चन्दनबालाके हाथसे सम्पन्न हुआ।

उपसर्गोंकी झांकी

तपस्याके समय देवता, मनुष्य एवं तिर्यञ्चों द्वारा अनेक भीषण उपसर्ग किए गए, उनमेंसे कुछ एक नीचे दिए जा रहे है—

यक्षालयमें ध्यानस्थ-अवस्थामें शूलपाणि यक्षने अनेक उपद्रव किए।

चण्डकौशिक सांपकी बांबी पर ध्यान करते समय उसने तीन बार डंक मारा, उससे घोर पीड़ा हुई।

लाट देशमें विहार करते समय तीन साल तक अनार्य-लोगोंने अज्ञान एवं द्वेषके वश प्रभुको चोर-डाकू कह कर अनेक प्रकारके बन्धनोंसे बांधा और लकुटादिकसे पीटा। कहीं उनके पीछे कुत्ते लगवाये गए, तो कहीं उनके पैरों पर खीर रांधी गई।

इन्द्रके मुखसे प्रशंसा सुनकर अभव्य संगमदेवताने छः महीनों तक साथ रहकर बड़ी भारी तकलीफें दीं। फिर भी पूछने पर भगवान्ने उसको अपना हितैषी ही बताया। तब उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक ही रातमें बीस उपसर्ग किए। वज्रमुखी-चींटियां, बिच्छू, सांप, हाथी एवं सिंहादि बनाकर ध्यानस्थ भगवान्के शरीर पर छोड़े, हजार-भारका गोला उनके मस्तक पर आकाशसे गिराया तथा ऐसी सूक्ष्मरजोंकी वृष्टिकी, जिससे सांस लेना भी मुश्किल हो गया। फिर भी भगवान् सुमेरुपर्वतकी तरह अपने ध्यानमें अडिग रहे।

एकदा अज्ञानी ग्वालेने अपने बैल न मिलनेसे रोषारुण होकर कानोंमें कीलियां लगा दीं। भीषण पीड़ा हुई, मुँह सूज गया फिरभी प्रभु तो उसकी परवाह न करते हुए ध्यान एवं तपस्यामें ही लीन रहे। मौका पाकर खरकवैद्यने उन कीलियोंको निकाल दिया, लेकिन भगवान् तो समतामें निमग्न थे। न तो ग्वाले पर द्वेष था, और न वैद्य पर राग था। तुच्छ-सी बुद्धि एवं छोटी-सी लेखनी कहां तक वर्णन कर सकती है।

इस प्रकार बारह वर्ष और तेरह पक्षों तक भगवान् महा-

वीरने अद्भुत वीरताके साथ कर्मशत्रुओंसे युद्ध किया। आखिर कर्मशत्रु हारे और वैसाख शुक्ला दशमीके दिन प्रभु केवलज्ञानी बने। मध्यमअपापा नगरीमें समवसरण हुआ। इन्द्रादि दर्शनार्थ आए। चमत्कार देखकर विद्याका अभिमान करते हुए चवालीस सौ छात्रोंसे परिवृत इन्द्रभूति-गौतम आदि ग्यारह वेदान्ती-ब्राह्मण समवसरणमें उपस्थित हुए। लेकिन प्रभावित होकर कुछ बोल नहीं सके एवं अपने मनकी शंकाओंका समाधान पाकर सभीने भगवान्के पास दीक्षा ग्रहण करली। चार तीर्थोंकी स्थापना हुई, गौतम आदि चौदह हजार साधु हुए, चन्दनबाला आदि छत्तीस हजार साध्वियाँ हुईं, आनन्द आदि एक लाख उनसठ हजार श्रावक हुए और सुलसा आदि तीन लाख अठारह हजार श्राविकाएं हुईं।

प्रभुने धर्म मार्गमें जातिको महत्त्व न देकर गुण एवं कर्मको ही मुख्य माना। हर एक जातिको उन्होंने अपने संघमें स्थान दिया। उदायन-प्रसन्नचन्द्र आदि बड़े-बड़े नरेशोंने मृगावती-चेलना आदि महारानियोंने तथा शिवराज-स्कन्दक आदि संन्यासियोंने प्रभुके पास संयम स्वीकार किया और श्रेणिक आदि राजा उनके परम श्रद्धालु भक्त हुए।

भगवान्ने अहिंसाको उत्कृष्ट धर्म बताया और यज्ञोंमे होनेवाली हिंसाका उग्र विरोध किया। तीस वर्ष तक विश्वको सन्मार्गमें लगाकर राजा हस्तपालकी राजधानी पावापुरीमें अन्तिम

चातुर्मास किया। कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीको रातके बारह बजे प्रभुने चौविहारसंथारा करके अमृतवर्षिणी वाणीसे लगातार सोलह पहर तक उपदेश दिया, जिसे अनेक देवता और मनुष्य सुनते रहे। ऐसे ज्ञान-सुनाते-सुनाते कार्तिक कृष्णा अमावस्या रातके बारह बजे आठों कर्मोंको खपाकर प्रभु निर्वाणको प्राप्त हो गए। निर्वाण-महोत्सव करनेके लिये इन्द्रादि देवता आए। उनके विमानोंके रत्नोंके प्रकाशसे अँधेरी अमावस्या भी दिवाली नामका पर्व बन गई। भगवान् महावीरकी गद्दी पर श्रीसुधर्मस्वामी (जो पांचवें गणधर थे) बैठाए गये।

प्रसङ्ग अठारहवां

श्री गौतमस्वामी

गौतमस्वामीका नाम जैनजगत्में बहुत प्रसिद्ध है जो भगवान् महावीरको जानते हैं प्रायः वे गौतमस्वामीको जानते ही हैं। चौदह हजार साधुओंमें मुख्य होते हुए भी उनकी निरभिमानिता अवर्णनीय थी, चार ज्ञान और चौदहपूर्वके धारक होते हुए भी उनका विनय अनूठा था तथा विचित्रलब्धियोंके भण्डार होते हुए भी उनकी क्षमा अद्भुत थी। वे हर एक बात भन्ते! भन्ते! कहकर कितने विनयके साथ प्रभुसे पूछा करते थे और प्रभु गोयमा! गोयमा! सम्बोधन करके कितनी वत्सलताके साथ उत्तर देते थे, जैनशास्त्रोंका अध्ययन करनेसे ही उसका पता चल सकता है।

वे कौन थे?

विहार प्रान्तके गोब्बर ग्राममें पृथ्वी माताकी कुक्षि द्वारा इन्द्रके सपनेसे उन्होंने जन्म लिया था। उनके पिताका नाम वसुभूति था एवं वे जातिसे ब्राह्मण थे। यद्यपि इन्द्र-स्वप्नके अनुसार उनका नाम इन्द्रभूति रखा गया था, फिर भी गौतम गोत्र होनेके कारण जैनजगत्में इन्द्रभूतिकी अपेक्षा गौतमस्वामी विशेष प्रसिद्ध हो गया। दो छोटे भाई थे, उनका नाम अग्निभूति एवं वायुभूति था। इन्द्रभूति वेद और वेदान्तके अद्भुत वेत्ता थे। वे पाँच-सौ छात्रोंको पढ़ाते थे तथा स्वर्गकी इच्छासे अनेक प्रकारके यज्ञ किया करते थे।

यज्ञमें क्षोभ

एकदा मध्यमअपापा नगरीमें सोमिल ब्राह्मणके यहां इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे। इधर केवलज्ञान होते ही भगवान महावीरका वहां समवसरण हुआ। दर्शनार्थ इन्द्रादि-देवता आने लगे। उन्हें देखकर इन्द्रभूति कहने लगे— ये सब देवता हमारे यज्ञकी आहुति लेने आ रहे हैं। किन्तु उन्हें ऊपरके ऊपर जाते देखकर इन्होंने अपने साथियोंसे पूछा— तब किसीने कह दिया कि एक इन्द्रजालिकने आकर इन्द्रजाल खोला है- ये सब उसीके पास जा रहे हैं। क्षुब्ध होकर इन्द्रभूति बोले—अरे! यह कौन-सा इन्द्रजालिक बाकी रह गया, जब कि मैंने दुनियां भरके विद्वानोंको जीत लिया।

इन्द्रभूति प्रभुके पास

इस प्रकार विद्याके मदसे गर्जते हुए इन्द्रभूति पांच-सौ छात्रोंके परिवारसे ज्यों ही प्रभुके समवसरणमें प्रविष्ट हुए, वे स्तब्ध-से हो गए और सोचने लगे—क्या यह ब्रह्मा है? विष्णु है? महेश है? सूर्य है? चन्द्र है? इन्द्र है? या कुबेर है? नहीं!! वे वे चिन्ह न होनेसे ब्रह्मादि तो नहीं है किन्तु सर्वज्ञ, सर्वदर्शी एवं वीतराग भगवान् महावीर है। अब क्या करूं? कहां जाऊं? इनका तेज आगे तो बढ़ने नहीं देता और वापस जानेसे बदनामी होगी। ऐसे विचार ही रहे थे कि प्रभुने कहा-इन्द्रभूति! आ गए? बस अब तो आश्चर्यका पार नहीं रहा और अपने मनमें कहने लगे— यदि ये मेरी शंकाका समाधान करदें

तो मैं इनका शिष्य बन जाऊँ।

द द द

सर्वज्ञ प्रभुने गम्भीर स्वरसे शीघ्र ही द द द इस वेद-मन्त्रका उच्चारण किया और कहा-इन्द्रभूति! तुम्हारे दिलमें जीव है या नहीं ? यह शंका है, किन्तु तुम्हारा यह वेदमन्त्र ही जीवकी सिद्धि करता है। देखो इसमें एक द का अर्थ है दान। दूसरे द का अर्थ है दया तथा तीसरे द का अर्थ है दमन। अब सोचो! दान, दया और इन्द्रियदमन जीव करता है या जड़ पदार्थ ?

समाधान और दीक्षा

बस, इन्द्रभूतिजीका जीव-विषयक सन्देह मिट गया एवं वे उसी वक्त पाँच-सौ शिष्यों सहित प्रभुके पास साधु बन गए। पता पाकर अग्निभूति आदि विद्वान् अपने-अपने शिष्योंके परिवारसे आते गए और शंकाओंका समाधान करके संयम लेते गये। एक ही दिनमें चवालीससौ ग्यारह दीक्षाएँ हो गईं। जो ग्यारह पण्डित थे वे ग्यारह गणधर कहलाए। उनके नाम इस प्रकार थे—

१. इन्द्रभूति २. अग्निभूति ३. वायुभूति ४. व्यक्त ५. सुधर्म ६. मण्डितपुत्र ७. मौर्यपुत्र ८ अकम्पित ६. अचलभ्राता १०. मेतार्य ११. प्रभास

उपदेश

प्रभुने उत्पात, व्यय और ध्रौव्य-इन तीन पदोंका उपदेश

देकर उनको अगाध तत्वज्ञान दिया। उन्होंने उसी ज्ञानका संकलन करके आगम-शास्त्र बनाए। गौतमस्वामी निरन्तर छट्ठ-छट्ठ तपस्या किया करते थे तथा सूर्यके सामने ध्यानस्थ होकर आतापना लिया करते थे। तपस्यासे उन्हें अनेक चमत्कारी लब्धियां-शक्तियां प्राप्त हुई। उनका प्रभुके साथ अत्यधिक प्रेम था। इसीलिए उन्हें प्रभुकी विद्यमानतामें केवलज्ञान नहीं हुआ।

केवलज्ञान और निर्वाण

भगवान्‌ने लाभ समझकर अन्तमें उन्हें देवशर्मा ब्राह्मणको प्रतिबोध देनेके लिए भेज दिया एवं पीछेसे आप मोक्ष पधार गए। यह समाचार सुनकर गौतमने कुछ क्षणों तक काफी मोह-विलाप किया। फिर सम्भल कर शुक्लध्यानमें लीन बने एवं शीघ्रही केवलज्ञानको प्राप्त हुए तथा आठ साल केवल-पर्याय पालकर सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त हुए।
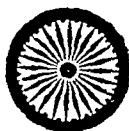
प्रसङ्ग उन्नीसवां

महान् अभिग्रह फला

चन्दनबाला

महासती चन्दनबाला महारानी धारणीकी पुत्री थी। उसके पिता चम्पा नगरीके महाराज दधिवाहन थे। चन्दनबालाका जन्म-नाम वसुमती था। किन्तु विशेष शीतल होनेके कारण चन्दना एवं चन्दनबाला होगया। माताकी शिक्षा पाकर राजकुमारी बहुत ही धार्मिक-संस्कारवाली बन गई।

आक्रमण

एक बार कौशाम्बिपति राजा शतानीकने चम्पानगरी पर अचानक आक्रमण कर दिया। महाराज दधिवाहन भाग गए। दुश्मनकी सेनाने तीन दिन तक शहरमें लूट-खसोट की जिसके जो कुछ हाथ लगा, ले भागा। एक सैनिक राजमहलमें आया और रूपसे मोहित होकर रानी एव राजकुमारीको ले चला। वह इतना अधिक कामातुर हो गया कि जंगलमे ही जबरदस्ती अत्याचार करनेकी चेष्टा करने लगा। महारानीने शीलभंगका अवसर देखकर अपनी जीभ खींचकर प्राणोंका बलिदान कर दिया।

हाथ पकड़ लिया

माताके मरते ही चन्दनबाला भी जीभ खींचकर मरने लगी। सैनिकने उसका हाथ पकड़ लिया और रोता हुआ अपने अपराधकी क्षमा मांगने लगा तथा धर्मकी पुत्री बनाकर राज-

कुमारीको अपने घर ले आया। नौजवान लड़कीको देखते ही सैनिककी स्त्री झगड़ा करने लगी एवं बात-बातमे चन्दनबालाको हैरान करने लगी। उसके मनमें सन्देह हो गया था कि कहीं यह मेरे घरकी स्वामिनी न बन बैठे। एक दिन सैनिकसे वह कहने लगी कि चम्पाकी विजयके उपलक्षमे धन-राशिके बदले तुम मेरे लिए यह झगड़ा लाए हो। जाओ! इसे आजकी आज बेच कर २० लाख मोहरें लाओ अन्यथा मैं मर जाऊँगी! भयंकर क्लेश देखकर राजकुमारी घरसे निकल पड़ी और पीछे-पीछे रोता हुआ वह सैनिक भी।

कोई खरीदो!

बाज़ारके बीच खड़ी होकर महासती कहने लगी-अरे लोगों! मुझे कोई खरीदो और मेरे बापको बीस लाख मोहरें दो। मै नौकरका हरएक काम कर दूंगी। बाजारमे मेला-सा लग रहा था। इतनेमे एक वेश्याने आकर उसे खरीद लिया। कन्याने पूछा— माताजी! मुझे क्या काम करना होगा?

वेश्या— काम और कुछ भी नही है, एक मात्र आए हुए मनुष्यों-का दिल खुश करना होगा।

चन्दनबाला — माताजी! मैं सती हूँ, यह काम नही कर सकती।

वेश्या— सौदा हो चुका अत अब तुझे मै हर्गिज नहीं छोड़ूंगी।

वेश्याकी दासियां सतीको जबरदस्ती पकड़ने लगीं, तब सतीने प्रभुका ध्यान कर लिया। देवशक्तिसे अचानक बन्दर आए और वेश्याके शरीरको नोच डाला एवं रोती-

पीटती वह अपने स्थान चली गई।

फिर भी क्रोध नहीं किया

इतनेमें एक धनावा सेठ आया उसने चन्दनबालाको बीस लाखमें खरीदा। ज्योंही बालिका घर आई मूला सेठानीके आग लग गई और सैनिककी स्त्रीके समान वह भी क्लेश करने लगी। एक दिन सेठ कार्यवश कहीं बाहर गांव गया था। पीछेसे मौका पाकर सेठानीने घरके द्वार बन्द करके बालिकाका सिर मूंड दिया, वस्त्राभूषण खुलवा लिए, हाथों और पैरोंमें हथकड़ियां और बेड़ियां पहनादीं और घसीटकर एक कोठेमें बन्द करके खुद अपने पीहर चली गई। सतीने माता पर फिर भी क्रोध नहीं किया वह परम-शान्तभावसे प्रभुका स्मरण करती रही।

चौथे दिन सेठ आया। घरमें सुनसान देखकर वह घबराया एवं बेटी! बेटी! कहकर चिल्लाने लगा। कोठा खोलकर ज्योंही चन्दनाको देखा, बेहोश होकर बुरी तरहसे रोने लगा। सतीने सान्त्वना देते हुए कहा-पिताजी! मै तीन दिनसे भूखी हू अतः कुछ खाना तो दीजिए, रोनेसे क्या होगा! सेठने इधर-उधर देखा तो मात्र तीन दिनके रांधे हुए उड़दोंके बाकुले मिले। कोई वर्तन भी नहीं पाया अतः छाजके कोनेमे उन्हें डालकर चन्दनाको दिया और स्वयं हथकड़ी-बेड़ी कटवानेके लिए लोहारको लेने गया।

अभिग्रह

उस समय भगवान् महावीरने तेरह बातोंका महान् अभि-

ग्रह धारण कर रखा था। वह ग्रह था–(१) देनेवाली सदाचारिणी हो। (२) राजकन्या हो। (३) खरीदी हुई हो। (४) उसका सिर मूंडा हुआ हो। (५) एक मात्र लंगोटी पहने हो। (६) हाथोंमें हथकड़ी हो। (७) पैरोंमे बेड़ी हो (८) उसका एक पैर देहलीके बाहर हो और एक अन्दर हो। (१०) छाजके कोनेमें उड़दके बाकुले हों। (११) प्रसन्न हो। (१२) आंखोंमें आंसू हों। (१३) तीसरा पहर हो– ये तेरह बाते मिलेंगी तो ही मैं पारणा करूँगा, अन्यथा छ महीनों तक अन्न-पानी नहीं लूँगा।

आंसू नहीं थे

पाँच मास पच्चीस दिन बीत चुके थे इधर सती चन्दनबाला उन उड़दके बाकुलोंको हाथमें लेकर भावना भा रही थी कि कोई त्यागी-तपस्वी मुनि आ जाए, तो पहले उन्हें कुछ देकर पीछे पारणा करूँ। अचानक भगवान् पधार गए। देखते ही चन्दनबाला हर्ष-विभोर हो गई और प्रार्थना करने लगी–तारिए भगवन्! तारिए इस अनाथ बालिकाको। प्रभुने देखा तो सब बोल मिल रहे थे, लेकिन आंखोंमे आंसू नहीं थे अतः प्रभु वापस फिर गए। बस, फिरते ही बालिका रोने लगी और कहने लगी– प्रभो! क्या आप भी मुझे इस विपत्तिमे छोड़कर जा रहे हैं? दीनबन्धो! दया कीजिए एव मेरे हाथोंसे उड़दके बाकुले लीजिए!

अभिग्रह फल गया

चन्दनबालाकी आखोंमे आंसू आते ही अभिग्रह फल

गया और प्रभुने वहीं उन वाकुलोंसे पारणा कर लिया। देवोंने अहोदानम्-अहोदानम्की हर्ष ध्वनि की। साढ़े बारह करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ वरसाईं तथा सतीको दिव्य वस्त्राभूषणों और केशोंसे अलंकृत करके रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठाया। पता पाते ही दौड़कर मूलासेठानी आई और ज्योंही स्वर्ण-मुद्राओंके हाथ लगाने लगी, देववाणीने कहा- यह सारा धन महासतीके दीक्षा महोत्सवमें लगेगा। खबरदार! किसीने ले लिया तो!

इधरसे लोहारको लेकर सेठ आया, पर वहां तो सारा खेल ही बदल चुका था। चन्दनाने माता-पिताको नमस्कार करके सिंहासन पर दोनों तरफ़ बैठाया। समाचार सुनकर राजा शतानीक और रानी मृगावती, जो इसके मौसा-मौसी थे, आए एवं अपराधकी क्षमा मांग कर सतीको राजमहलोंमें ले गये। फिर शीघ्रातिशीघ्र महाराजा दधिवाहनको, जो कहीं भाग गये थे, पता लगाकर लाए और क्षमायाचना करके चम्पाका राज्य उनको वापस दे दिया।

दीक्षा

साढ़े बारह साल घोर तपस्या करके प्रभु सर्वज्ञ बने गौतमादि चवालीस-सौ पुरुषोंने दीक्षा ली। इधर चन्दनबाला भी भगवान्के चरणोंमें पहुँची और अनेक सखियोंके साथ दीक्षित बनी। भगवान्ने विशेष योग्य समझकर उसे साध्वी-संघकी मुख्यता दी। बहुत वर्षों तक संयम पालकर अन्तमें आठों कर्मोंका नाश करके वह सिद्धगतिको प्राप्त हुई एवं सदाके लिए

जन्म-मरणके बन्धनोंसे छूट गई ।

विकट समयमें धर्मकी रक्षा कैसे करना, तथा दुःखमें सहनशील बनकर धैर्य कैसे रखना आदि-आदि बातें चन्दन-बालाकी जीवनीसे अवश्य सीखनी चाहिए ।
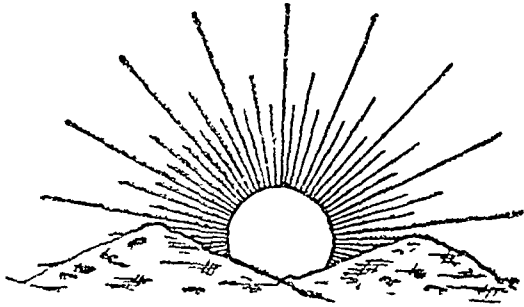
प्रसङ्ग बीसवां

दो साधु जला दिए

[गोशालक]

गोशालक डकोत जातिका था। दीक्षाके बाद दूसरा चौमासा भगवान् महावीरने नालन्दा (राजगृह) में किया। गोशालकने प्रभुके त्याग एवं तपस्यासे प्रभावित होकर उनके पास दीक्षा ली। यद्यपि केवलज्ञान होनेसे पहले तीर्थंकर दीक्षा नही देते, लेकिन भावीवश भगवान् उसे नहीं टाल सके।

अविनीत

गोशालक शुरूसे ही अविनीत था। प्रायः प्रभुकी बातको असिद्ध करनेकी चेष्टा किया करता था। एक बार गुरु-चेले सिद्धार्थपुरसे कूर्मग्रामको जा रहे थे। रास्तेमे तिलका बूटा देखकर गोशालकने पूछा— भगवन्! क्या इसमें तिल उत्पन्न होंगे? भगवान् बोले, हां! इन सात फूलोंके जीव इस बूटेकी एक फलीमें सात तिल होंगे। भगवान् आगे पधार गये और उस अविनीतने उस बूटेको उखाड़ कर ही फैंक दिया।

बचा लिया

आगे कूर्म-ग्रामके बाहर वैश्यायन नामक तपस्वी धूपमें उलटे सिर लटकता हुआ तपस्या कर रहा था। उसकी जटासे जूएँ गिर रही थी और वह पुनः उन्हें उठा-उठा कर अपनी जटाओंमें रख रहा था। गोशालकने जूओंका शय्यातर-घर कह कर उसे छेड़ा। उसने गुस्से होकर उष्ण-तेजोलेश्या छोड़ दी। गोशालक

भस्म हो जाएगा ऐसे सोचकर प्रभुने अपनी शीतल तेजोलेश्या निकाली एवं उष्णतेजको नष्ट करके उसको बचा लिया।

लब्धिकी विधि

गोशालकने पूछा– भगवान्। इस लब्धिकी विधि क्या है? प्रभु बोले, बेले–बेले निरन्तर छः मास तक तपस्या करके पारणेमें उबले हुए मुट्ठीभर उड़द और एक चुल्लू गर्म पानी लेकर सूर्यके सामने आतापना लेनेसे यह लब्धि उत्पन्न हो सकती है।

कुछ समयके बाद भगवान् उसी मार्गसे वापस आए। तिलके बूटे वाला स्थान आते ही गोशालकने कहा— देखिए भगवन्! तिल पैदा नही हुए है। प्रभु बोले–देख! तेरा उखाड़ा हुआ तिलका बूटा फिरसे खड़ा हो गया है और दाने भी उसमें सात ही हैं। होनहारका यह अद्भुत चमत्कार देखकर गोशालक नियतिवादकी तरफ झुक गया और उसने प्रभुसे अलग होकर घोर तपस्या द्वारा तेजोलब्धि प्राप्त की।

फिर श्री पार्श्वनाथ भगवान्के शासनसे गिरे हुए छः साधु उसे मिले, उनसे उसने निमित्तशास्त्र पढ़कर दुनियांको सुख-दुःख, हानि–लाभ और जन्म–मरण सम्बन्धी बातें बतलाई एवं चमत्कार को नमस्कारवाली कहावतके अनुसार उसकी भक्तमण्डली बहुत ज्यादा बढ़ गई। बढ़ क्या गई! भगवान्के होते हुए भी वह तीर्थंकर कहलाने लगा। भगवान्के श्रावक थे एक लाख उनसठ हजार और उसके श्रावक थे ग्यारह लाख इकसठ हजार। वह उद्यमको न मानकर होनहारको ही मानता था। उसका कहना

था, कि जो कुछ होना है वह ही होता है, उद्यम करना व्यर्थ है।

सावत्थीमें भीषण उत्पात

प्रभुसे अलग होनेके लगभग अठारह वर्ष बाद एक बार भगवान् सावत्थी नगरी पधारे हुए थे और गोशालक भी वहीं था। भिक्षाके लिए जाते समय श्री गौतमस्वामीने लोगोंके मुँहसे सुना—आजकल यहां दो तीर्थंकर विचर रहे हैं। वे प्रभुके पास आकर आश्चर्यसे पूछने लगे-प्रभो! क्या गोशालक भी तीर्थंकर एव सर्वज्ञ है? प्रभुने कहा, आजसे चौबीस वर्ष पहले यह मेरा शिष्य बना था तथा छ साल मेरे साथ भी रहा था। फिर अलग होकर इसने तेजोलब्धि एवं निमित्तशास्त्रका अध्ययन किया। अब उस अध्ययनके प्रभावसे जगत्को चमत्कार दिखला रहा है और तीर्थंकर कहला रहा है, लेकिन वास्तवमे यह असत्य प्रचार है।

मैं अभी आ रहा हूँ

प्रभुकी कही हुई यह बात गोशालकने सुनी एवं वह क्रुद्ध हुआ। प्रभुके शिष्य श्री आनन्दमुनि जो भिक्षार्थ भ्रमण कर रहे थे, उन्हें देखकर कहने लगा— ओ वे आनन्द। तेरे गुरु जहाँ-तहाँ लोगोंमें मेरी निन्दा कर रहे हैं, मै उसे सहन नहीं कर सकता। जा। उन्हें सावधान करदे और कहदे कि मै वहाँ अभी आ रहा हूँ और निन्दाके फल दिखा रहा हूँ। भयभीत-आनन्दमुनिने प्रभुसे सारे समाचार कहे। प्रभुने गौतम आदि सब

साधुओंको सूचना कर दी कि क्रुद्ध गोशालक आ रहा है, इस समय उससे कोई धर्मचर्चा न करें।

दो मुनि भस्म

वस, इतने ही में अपने शिष्यों सहित गोशालक वहाँ आ गया और क्रोधके आवेशमें कहने लगा- महावीर! मै तुम्हारा शिष्य जो गोशालक था, उसके शरीरमे निवास करनेवाला कौडिन्यायनगोत्रीय–उदायी नामका धर्मप्रवर्तक हूँ, लेकिन तुम्हारा दीक्षित गोशालक नहीं हूँ। प्रभुने कहा— असत्य क्यों वोलता है, वही गोशालक तो है। अब तो गोशालक गर्म होकर वहुत ही अंट-सट वोलने लगा। यह अनुचित वर्ताव देखकर क्रमशः सर्वानुभूति और सुनक्षत्रमुनि रुक नहीं सके एवं कहने लगे-अरे गोशालक! अपने उपकारी धर्मगुरुके साथ यह क्या व्यवहार कर रहे हो? कुछ विचार तो करो। ठहरो! ठहरो!! करता हूँ विचार, ऐसे कहकर क्रोधी गोशालकने तेजोलेश्या छोड़ दी, उससे वे दोनों मुनि भस्मसात् हो गये और क्रमशः आठवें एव वारहवें स्वर्गमे गये। फिर हितशिक्षा देनेसे प्रभु पर भी उसी शक्तिका प्रयोग करता हुआ वोला—ओ महावीर! मेरे इस तेजसे जलकर छः महीनोंके अन्दर ही तुम मर जाओगे। प्रभुने कहा— गोशालक! मैं तो सोलह वर्ष तक सानन्द विचरूँगा, किन्तु तेरे अपने ही तेजसे जलकर तू आजसे सातवे दिन मृत्यु को प्राप्त होगा।

ठीक ऐसा ही हुआ। यद्यपि उसके तेजसे प्रभुका शरीर

शकरकंदकी तरह सिक गया और उसके कारण आप छः मास तक उपदेश नहीं कर सके। लेकिन इतना कुछ होने पर भी शरीर वज्रमय था अतः वह तेज उसके अन्दर नही घुस सका और लौटकर अपने मालिक गोशालकके ही शरीरमे जा घुसा। उसके शरीरमें आग-आग लग गई, वह विभ्रान्त-सा हो गया, साधुओं-के पूछे हुए प्रश्नोंका कुछ भी जवाब नहीं दे सका और चुप-चाप अपने स्थानको लौट गया। अपने धर्माचार्यकी यह दशा देखकर उसके अनेक शिष्य उसे झूठा समझकर भगवान्की शरणमें आ गए।

भावना बदल गई

गोशालक मनमें तो जान ही रहा था कि भगवान् सच्चे हैं और मै झूठा हूँ। लेकिन शिष्योंके चले जानेसे तथा शरीरमे दाह लगनेसे अब उसकी भावना और भी वदल गई। वह अपने किए हुए काले कारनामोंका स्मरण करता हुआ रो पड़ा और अन्तमे अपने मुख्य श्रावकोंको बुलाकर कहने लगा कि सच्चे सर्वज्ञ भगवान् तो प्रभु महावीर ही हैं। मैने तुम्हें जो कुछ समझाया था वह असत्य है। हाय! मिथ्याप्रचार करके मैने वहुत बड़ा पाप किया है। अब मेरी जीवनवाती शीघ्र ही बुझने वाली है।

उक्तकार्य अवश्य करना!

मृत्युके बाद मरेहुए कुत्तेकी तरह मुझे सारे शहरमें

घसीटना और मुँहमें थूकते हुए कहना कि यह मखलिपुत्र-गोशालक पाखण्डी था, धोखेबाज था और इसने झूठा ढोंग करके दुनियाको ठगा था। यदि तुम मेरे सच्चे भक्त हो तो उक्त कार्य अवश्य करना।

ऐसे अपनी निन्दा करता हुआ गोशालक मरकर बारहवें स्वर्गमें उत्पन्न हुआ। भक्तोंने मकानके अन्दर नगरकी कल्पना करके गुप्तरूपसे अपने गुरुकी आज्ञाका पालन किया।

गोशालक स्वर्गसे च्यवकर विमलवाहन नामक राजा होगा, वह सुमंगल नामक मुनिको सताएगा और मुनि द्वारा भस्म किया जा कर सातवें नरकमे जाएगा। फिर चारों गतियोंमे खूब भटक-कर अन्तमे सिद्ध, बुद्ध एव मुक्त होगा।

प्रसङ्ग इक्कीसवां

किज्जमाणे कडे

(जमालि)

भगवान् महावीरका कथन है किज्जमाणे कडे अर्थात् जो काम करना शुरू कर दिया वह किया ही कहलाता है क्योंकि कितनेक अंशोंमें तो वह हो ही चुका। जैसे—यदि कोई किसी गांवको लक्ष्य करके चल पड़ा उसे गाव गया कहा जाता है। ऐसे ही कपड़ा बुनना शुरू हो गया उसे बुनाही कहते हैं। जमालि इसी विषय पर सन्देह करके पतित हुआ था।

जमालि भगवान् महावीरका संसारपक्षीय दामाद था। प्रभुकी वाणी सुनकर पांच-सौ क्षत्रियकुमारोंके साथ उसने दीक्षा ली थी। उसकी पत्नी प्रियदर्शना भगवान्की पुत्री थी, वह भी हजार स्त्रियोंके परिवारसे साध्वी बनी थी। दीक्षाका विस्तृत वर्णन भगवतीसूत्रमें है।

जमालिके शंका

ग्यारह अंग पढ़कर जमालि प्रभुकी आज्ञासे पाँच-सौ साधुओंका मुखिया बनकर विचरने लगा। इधर महासती प्रियदर्शना भी एक हजार साध्वियोंके परिवारसे गांवों-नगरोंमे धर्मका प्रचार करने लगी। एक बार जमालिमुनि सावत्थी नगरीके तिन्दुक वनमें ठहरा हुआ था। कुछ अस्वस्थताके कारण एकदिन उसने अपने साधुओंसे संथारा-बिछौना बिछानेके लिए

कहा। वे विछा ही रहे थे कि उसने व्याकुलतावश पूछा— विछा दिया विछौना ? उत्तर मिला–जी। विछा रहे हैं। यह उत्तर सुनकर जमालि सोचने लगा कि भगवान् महावीर जो किज्जमाणे कडे कहते हैं वह असत्य है क्योंकि जवतक कार्य पूर्ण नहीं होता तब तक फलदायक नहीं हो सकता। बस, मोहकर्मके उदयसे जमालि उल्टे रास्ते चढ़ गया और महावीर झूठे हैं एव मैं सच्चा हूँ ऐसे अपने साधुओंसे कहने लगा। साधुओंने उसे बहुत सम-झाया, लेकिन वह नहीं माना, तब बहुत सारे साधु उसको छोड़-कर भगवान्की शरणमे आ गये। इधर साध्वी–प्रियदर्शना भी जमालिकी वात पर विश्वास करके प्रभुसे अलग हो गई और जमालिके सिद्धान्तोंका प्रचार करने लगी।

कुम्हारकी युक्ति

एक वार वह ढक कुम्हारके यहां ठहरी हुई थी। कुम्हार भगवान्का श्रावक था। एक दिन उसने प्रियदर्शनाको समझानेके लिए उनकी पछेवड़ीके एक कौने पर आग लगा दी और वह जलने लगी। तब चौंककर प्रियदर्शनाने कहा–अरे रे !! पछेवड़ी जल गई। सुनते ही कुम्हार वोला— महासतीजी! आप क्या फरमा रही हैं ? जमालिके सिद्धान्तसे तो पछेवड़ी जलने लग गयी ऐसे कहना चाहिये, किन्तु जलते हुएको जलगया कहना उचित नहीं है।

आँखें खुल गईं

कुम्हारकी इस अद्भुत युक्तिसे प्रियदर्शनाकी आंखें खुल गईं और अज्ञान एवं मोहवश की हुई अपनी भूलका पश्चात्ताप करती हुई जमालिको छोड़कर भगवान्‌के चरणोंमें आ गई। एक बार जमालि चम्पानगरीमें भगवान्‌के समवसरणमें आकर कहने लगा कि मै केवलज्ञानी होकर निकला हूँ इसलिए मेरा सिद्धान्त सच्चा है। गौतमस्वामीने कहा— अगर तू केवलज्ञानी है, तो बता—यह संसार और जीव शाश्वत हैं या अशाश्वत ? जमालि उत्तर नहीं दे सका, तब प्रभुने फरमाया कि मेरे कई छद्मस्थ शिष्य इस प्रश्नका उत्तर दे सकते हैं। तू कहता है, मैं केवली हूं तो फिर चुप क्यों खड़ा है ? फिर भी चुप ही रहा, तब भगवान् बोले— सुन ! द्रव्योंकी अपेक्षासे संसार और जीव शाश्वत है तथा पर्यायकी अपेक्षासे अशाश्वत हैं।

हठ नहीं छोड़ा

जमालि शर्मिंदा होकर चुपचाप चला गया, किन्तु वह अभिमानवश अपना दुराग्रह नहीं छोड़ सका और असत्य-प्ररूपणा करके दुनियांको बहकाता ही रहा। उसने सम्यक्त्वरत्न खो दिया एवं अन्तमे त्याग-तपस्याके बलसे मरकर छट्ठे स्वर्गमे किल्विपी-हीनजातिका देवता बना। वहांसे च्यव कर संसारमें भ्रमण करेगा और अन्तमे कर्मोंका नाश करके मोक्ष पाएगा। कारण, एक बार सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो गई थी।

प्रसङ्ग बाईसवां

श्री जम्बूस्वामी

वास्तवमे त्यागी वही है जो प्राप्त भोगोंको ठोकर मारता है, सन्तोषी वही है जो प्राप्त धनको छोड़ता है, क्षमावान् वही है जो आए हुए गुस्सेको दबाता है और मर्द वही है जो मार सकने पर भी नहीं मारता। श्री जम्बूस्वामीके त्याग एव वैराग्यकी कहां तक प्रशंसा की जाए, जिन्होंने शामको आठ-आठ सुन्दरियोंसे विवाह किया और सवेरे संयम ले लिया। संयम भी अकेलेने नहीं लिया, किन्तु पॉच-सौ सत्ताईसके साथ लिया था।

जन्म और वैराग्य

राजगृह नगरमे ऋषभदत्त सेठ था। धारणी सेठानी थी और उनके जम्बूकुमार नामक एक पुत्र था। वह पढ़-लिखकर तैयार हुआ, बड़े बडे रईसोंकी आठ पुत्रियोंसे उसका सम्बन्ध किया गया एव विवाह भी निश्चित हो गया। केवल एक ही दिन की देरी थी कि अचानक भगवान् श्री महावीरके पट्टधर शिष्य श्री सुधर्मस्वामी वहां पधारे। अपना अहोभाग्य मानते हुए हज़ारों नगरनिवासी दर्शनार्थ उपस्थित हुए, जिनमे जम्बूकुमार भी शामिल थे। सुधर्मस्वामीने अपनी ओजस्विनी वाणीमे संसारको निस्सार कहा, विषय-विलासोंको बूरके लड्डूके समान कहा तथा भौतिकसुखोंको मृगमरीचिकाकी उपमा दी। यह सुनकर जम्बूकुमार वैराग्यभावनासे ओत-प्रोत हो गए एवं

गुरुजीसे प्रार्थना करने लगे— प्रभो ! संसार झूठा है। मैं इससे उद्विग्न हो गया हूँ अतः साधु बनूंगा। यों कहकर आजीवन ब्रह्मचारी रहनेका संकल्प किया। फिर घर आकर माता-पितासे दीक्षाकी आज्ञा मांगने लगे। बात सुनते ही मां-बाप मूर्च्छित हो गये। घरमें हा-हाकार मच गया और कुमारको बहुत समझाया गया, किन्तु वे तो टससे मस भी नहीं हुए। अन्तमे केवल विवाह करनेका आग्रह किया गया। तब माता-पिताका मन रखनेके लिए कुमारने कहा— मैं आपके कहनेसे आज शामको विवाह तो करा लूंगा, लेकिन सवेरे दीक्षा लिए बिना कभी न रहूंगा। यह बात ससुरालवालोंको भी कहलवा दी गई। एवं वे भी इस बात से सहमत हो गए।

विवाह और चर्चा

बड़ी धूमधामसे विवाह सम्पन्न हुआ। निन्नाणवें करोड़ स्वर्णमुद्राएँ दहेजमें प्राप्त हुईं। जम्बूकुमार रंगमहलमें पहुँचे, लेकिन विवाहकी खुशीका निशान तक नहीं था। वे सोच रहे थे कि कब यह रात पूरी हो और कब मैं संयम ग्रहण करूं। आठों स्त्रियोंने अपने पतिको भोगोंकी ओर आकृष्ट करनेके लिए अनेक हाव-भाव-विलास-विभ्रम किए, एक-एकसे अद्भुत, युक्तियां लगाईं, किन्तु जम्बूकुमारने उनको ऐसे वैराग्यपूर्ण जवाब दिये। जिनसे सारीकी सारी संयम लेनेको तैयार हो गईं।

प्रभव चोर

पति-पत्नियोंकी चर्चा चल ही रही थी कि प्रभावादि पांच सौ चोर वहां आए और अपार धनराशिकी गठड़ियां बांधकर ले जाने लगे। देवशक्तिसे प्रभवके सिवा सारे ही चोर स्तब्ध हो गए। आश्चर्यचकित प्रभव इधर-उधर देखने लगा, तो ऊपरसे कुछ आवाज़ आई तथा दीपकका प्रकाश भी नज़र चढ़ा। चुपकेसे ऊपर जाकर ज्योंही कुछ चर्चा सुनी, फिर तो रुक ही न सका एव प्रकट होकर कहने लगा— अरे जम्बू! क्या इन दिव्यभोगोंको तथा इन अप्सराओंको छोड़ना योग्य है। क्या वृद्ध माता-पिताओंको रुलाना शोभा देता है? नहीं, नहीं, तेरे जैसे विवेकीके लिए कदापि नहीं!

जम्बूका जवाब

अरे प्रभव! तू मुझे क्या समझाने आया है? सुधर्मगुरुने मेरी आंखें खोल दीं और अब मैं समझ गया कि विषयसुख अपार दुःखोंसे घिरी हुई एक शहदकी बून्द है, इन अप्सराओंका और माता-पिताओंका प्रेम अनन्त-मुक्ति सुखोंको रोकनेवाला है एवं तू जिस धनके लिए भटक रहा है वह भी यहीं रह जानेवाला है। प्यारे प्रभव! त्याग दे इस संसारकी मायाको! बस, बातों ही बातोंमे सूर्य उदय हो गया और चोरनायक-प्रभव भी उनके साथ दीक्षाके लिए तैयार हो गया।

दीक्षा और निर्वाण

दूसरे चोर भी संयम लेनेको तैयार हो गए तथा वर-कन्याओंके माता-पिता भी। पाँच-सौ सत्ताईसके परिवारसे श्री जम्बूकुमारने सानन्द दीक्षा ली और श्री सुधर्मस्वामीके पट्टधर हुए अस्तु! इस भरतक्षेत्रमें अन्तिमकेवली भी ये ही थे।

प्रसङ्ग तेईसवां

पतन और उत्थान

प्रसन्नचन्द्र–राजर्षि

किसी अनुभवीने ठीक ही कहा है, मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्धमोक्षयो' बांधनेवाला एवं खोलनेवाला यह मन ही है। स्वर्गोंकी दिव्यलीला एव नरकोंकी घोर पीड़ा देनेवाला भी यह मन ही है। आप पढ़कर आश्चर्य करेंगे कि प्रसन्नचन्द्र राजर्षिने मन हीसे सातवीं नरककी तैयारी कर ली और थोड़े ही क्षणोंमें उसी मनके सहारे केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

पोतनपुरपति महाराज प्रसन्नचन्द्र भगवान् महावीरकी वाणी सुनकर वैराग्यमें इतने भींग गये कि एक क्षण भी घरमें रहना उनके लिए मुश्किल हो गया अतः बहुत छोटेसे राजकुमार-को राज्य देकर मन्त्रि-मण्डलको कार्य भार सौंप दिया और स्वयं साधु बनकर प्रभुके साथ विचरने लगे एव घोरतपस्या करने लगे।

दुर्मुख दूत

एक वार महावीर प्रभु राजगृह पधारे। राजर्षि वहां आज्ञा लेकर दोनों हाथ ऊँचे करके वनमें एक वृक्षके नीचे ध्यान करने लगे। राजा श्रेणिक बडी धूम-धामसे भगवान्‌के दर्शनार्थ जा रहे थे। उनके दुर्मुख नामके दूतने ध्यानस्थ–मुनिको अपमान-सूचक शब्दोंमें कहा— धिक्कार है तुझे और धिक्कार है इस तेरे साधुपनको! जो तेरे जीते–जी तेरा राज्य खतरेमें जा रहा

है। क्योंकि सारा मन्त्रिमण्डल ही बदल गया है अतः अब तेरे पुत्रको राज्यभ्रष्ट कर देगा। बस, ऐसे सुनते ही राजर्षि भान भूलकर मन ही मन मन्त्रियोंसे घोरयुद्ध करने लगे।

क्या गति होगी ?

राजा श्रेणिकने भी ध्यानस्थ मुनिको सिर झुकाकर फिर प्रभुके दर्शन किए और पूछा— भगवन्! घोरतपस्या करनेवाले राजर्षि-प्रसन्नचन्द्रकी क्या गति होगी? प्रभु बोले-यदि इस समय आयुष्य पूर्ण करें तो सातवीं नरकमे जाएँ। क्या सातवीं नरक? नहीं! नहीं! अब छट्ठी नरक। राजाके दिलमें आश्चर्य-का पार नहीं रहा अतः बार-बार यही सवाल करने लगा और प्रभु पांचवीं, चौथी यावत् एक-एक नरक घटाने लगे तथा फिर तिर्यञ्च, मनुष्य, व्यन्तर, भवनपति, ज्योतिषी एव प्रथमस्वर्ग बताने लगे। ज्यों-ज्यों प्रश्न होता, एक-एक स्वर्ग बढ़ जाता। अन्तमे प्रभुने फरमाया कि इस समय यदि राजर्षिकी मृत्यु हो तो छव्वीसवें स्वर्गमे जाएँ।

गतिमें इतना फेर-फार कैसे ?

आश्चर्यचकित राजा श्रेणिकने पूछा— प्रभो! कुछ समझमें नहीं आया कि आपने गतिमें इतना फेर-फार कैसे किया, कृपा हो तो जरा तत्त्व बतलाइए! प्रभु बोले— राजन्! जब ध्यानस्थ-प्रसन्नचन्द्र अपने मन्त्रियोंसे घमासान-युद्ध कर रहे थे तब रौद्रपरिणामोंसे उन्होंने सातवीं नरकके कर्म इकट्ठे

कर लिए थे अतः मैंने सातवीं नरक कही थी। लड़ते-लड़ते उन्होंने मन हीसे सारी आयुधशाला खत्म करदी और कोई शस्त्र नहीं रहा, तब शिरस्त्राणका चक्र बनाकर मन्त्रियोंको मारनेके लिए सिर पर हाथ डाला, तो वहां केस भी नहीं थे, शिरस्त्राणका तो होना ही क्या था? मुण्डितशिरको देखते ही मुनि सम्भले एव होशमें आकर सोचने लगे। हाय! हाय! मैं तो साधु हूं किसका पुत्र और किसका राज्य! रहे तो क्या और जाए तो क्या। ऐसे सद्ध्यानमें जुड़कर वे क्रमशः नरकोंके बन्धन तोड़ने लगे और सद्गतिके योग्य पुण्योपार्जन करने लगे एवं अब उन्हें केवलज्ञान भी प्राप्त होनेवाला है। बस, बात करते-करते ही देव-दुन्दुभि बजने लगी और महोत्सवार्थ देवता भी आने लगे। राजा श्रेणिकने भी राजर्षिके केवलमहोत्सव किए।

प्रसङ्ग चौबीसवां

आदर्श-क्षमादान

सभी कहते हैं कि वैर-ज़हर बुरा है, किन्तु मौका पड़ने पर शत्रुको क्षमा देनेवाले वीर इने-गिने ही मिलते हैं।

वीतभय नगरमे तापस-भक्त उदायन नामके महाराज थे। दश मुकुटबन्ध राजा उनकी सेवा करते थे और सोलह देश उनके मातहत थे। उनकी पटरानीका नाम प्रभावती था जो भगवान्की परमभक्ता-श्राविका थी एवं महाराज चेटककी पुत्री थी। रानीके कारणसे ही महाराज जैनधर्मके प्रति श्रद्धालु बने थे। श्रद्धालु नामके ही नहीं थे बल्कि उन्होंने जैनधर्मका तलस्पर्शीतत्त्व भी समझ लिया था।

क्षमादानका अवसर

एक बार उज्जयिनीपति महाराज चण्डप्रद्योतनने उदायनकी दासी स्वर्णगुलिकाका अपहरण कर लिया। समझाने पर भी नहीं समझा और बात यहाँ तक बढ़ गई कि बड़ी भारी सेना लेकर ग्रीष्मऋतुमें उनको युद्ध करनेके लिए जाना पड़ा। भयंकर युद्ध हुआ। आखिर न्यायीकी जीत हुई। प्रद्योतन पकड़ा गया और मालवदेशमें महाराज उदायनकी सत्ता स्थापित हो गई। इतना ही नहीं, क्रोधवश उन्होंने अपराधीको मम दासीपति ऐसे अक्षरोंके दागसे दागी भी बना दिया तथा उसे बन्दीरूपसे लेकर वे अपने देशको रवाना हुए। मार्गमें संवत्सरी आ गई अतः

वनमें कैंप लगाए गए। धर्मप्रिय महाराज उदायनने उपवास-पौषध एवं सांवत्सरिक-प्रतिक्रमण किया। चौरासी लाख जीव-योनिसे खमत-खामना करके फिर चण्डप्रद्योतनसे भी क्षमायाचना करने लगे। तब उसने कहा, आइए-आइए धर्मका ढोंग करनेवाले महाराज उदायन! क्या भगवान्महावीरने आपको यही सिखलाया है कि एक आदमीका सर्वस्व लूटकर उसके आगे ऐसे क्षमा-याचनाका स्वांग रचाना? बस-बस, रहने दीजिये जले हुए पर नमक लगाना और मुर्दे पर तलवार चलाना! यह रहस्यभरी उग्रवाणी सुनकर क्षमा-प्रार्थी नरेशकी आंखें खुलीं और प्रद्योतनको फौरन मुक्त बनाकर पूर्वरूपमें स्थापित कर दिया! फिर हृदयसे क्षमायाचना करके अपने राज्यमें लौट आए। इसीका नाम है आदर्श-क्षमादान। केवल खामेमि सव्वे जीवे बोलनेसे क्या हो सकता है!

प्रसङ्ग पच्चीसवां

एक झोंपड़ी बची

कह तो हर एक देते हैं कि क्षमा करनी चाहिए, किन्तु अपना अपमान देखकर किसको क्रोध नहीं आता? स्वार्थभंग होने पर किसकी आँखें लाल नहीं होतीं? इसी लिए तो कहा गया है क्षमा वीरस्य भूषण धन्य है राजर्षि उदायनको जिन्होंने शान्तभावोंसे प्राणोंकी बलि चढ़ा दी, लेकिन हत्यारेके प्रति क्रोधको चमकने तक नहीं दिया।

भगवान्का पदार्पण

एकदा भगवान् महावीर सात-सौ कोसका विहार करके महाराज उदायनको तारनेके लिए वीतभय-पत्तन पधारे। प्रभुकी सुधावर्षिणी देशना सुनकर चरमशरीरी उदायननरेश संयम लेनेको तैयार हो गए। राज्यका अधिकारी यद्यपि उनका प्रियपुत्र अभीचकुमार ही था, किन्तु मेरा पुत्र राज्यमें गृद्ध बनकर कहीं नरकगामी न बन जाए, ऐसे सोचकर उन्होंने अपना राज्य पुत्रको नहीं दिया।

भानजेको राज्य

केशीकुमार नामक भानजेको राज्य देकर महाराज साधु बन गए, योग्यता प्राप्त करके प्रभुकी आज्ञासे वे एकाकी विचरने लगे। एवं मास-मासखमणकी घोरतपस्या करने लगे। तपस्याके कारण उनका शरीर रूखा-सूखा एवं रुग्ण हो गया। ग्रामों-

नगरोंमें विचरते एकबार वे अपनी जन्मभूमिमे पधार गए।

कृतघ्न केशी

समाचार सुनते ही कृतघ्न-भानजा चमका। उसके दिलमें शक हो गया कि मामा मेरा राज्य लेने आया है। पापीने गुप्तरूपसे शीघ्र ही प्रतिवन्ध लगा दिया। उसका नतीजा यह निकला कि शहरमे मुनिको ठहरनेके लिए किसीने भी स्थान नहीं दिया। दिनभर घूमते-घूमते मुनि संध्या-समय कुम्हारोंकी बस्ती में पहुंचे। वहां कुम्हारीके आग्रहसे कुम्हारने अपनी झोंपड़ी दी।

विषदान

कुम्हारकी झोंपड़ीमें ठहरकर मुनिराज वैद्योंसे दवा लेकर रोगोंकी प्रतिक्रिया करने लगे, किन्तु दुष्टराजासे यह भी सहन नहीं हुआ अतः दवामें जहर दिलवा दिया। सब बातका पता लगने पर भी राजर्षिने राजा पर बिल्कुल क्रोध नहीं किया और समतामें लीन बन कर अपनी जीवन-लीला समाप्त करके जन्म-मरणसे मुक्त हो गए।

देवोंका कोप

इस अन्यायपूर्ण हत्याको देखकर देव कुपित हुए। उन्होंने भयंकर धूलिकी वृष्टि करके शहरको मिट्टीमे मिला दिया, मात्र वही एक झोंपडी खड़ी रही, जिसमे महामुनिका निर्वाण हुआ था।

प्रसङ्ग छब्बीसवाँ

अभीचकुमारका क्रोध

बन्धुओं ! परम्परागत रूढ़िके अनुसार यद्यपि आप लोग सबसे खमत-खामना करते हैं, किन्तु ध्यान देकर देखिए कि जिनके साथ अनबन है, बोल-चाल बन्द है या कोर्टमें मामला चल रहा है, उनसे क्षमा माँगकर मनको शुद्ध बनाते हैं या नहीं ? यदि नहीं, तो आपके खमत-खामने मात्र ढोंग हैं ? क्या आप नहीं जानते कि एक उदायनसे मनमें द्वेष रखकर अभीचकुमार डूब गया और वैमानिकदेवता बननेके बदले असुरयोनिमें उत्पन्न हो गया ?

अभीचकुमार महाराज उदायनका पुत्र था। भगवान् महावीरका परम भक्त था एवं बारहव्रतधारी श्रावक था, किन्तु महाराजने योग्य होने पर भी अपना राज्य उसको न देकर केशीकुमार-भानजेको दे दिया। इससे उसको बहुत दुःख हुआ और राजाके संयम लेते ही अपने शहरको छोड़कर चम्पानगरी चला गया। वहां राजा कुणिक जो इसकी मौसीका पुत्र था, उसके पास रहकर दुःखमय-जीवन बिताने लगा।

यद्यपि सामायिक-प्रतिक्रमण आदि हररोज करता था, निरतिचार श्रावकव्रत पालता था, हरएकके साथ अच्छेसे अच्छा व्यवहार करता था, फिर भी महाराज उदायनके साथ इतना द्वेष था कि उनका नाम आते ही आँखोंसे खून बरसने लग

जाता था। मसारके सब जीवोंसे खमत-खामना करता था, लेकिन उदायन नामसे नहीं करता था। ऐसे अनन्तानुबन्धी-क्रोधके कारण वह पूर्वोक्त क्रिया-काण्ड करता हुआ भी मिथ्यादृष्टि बन गया एवं विराधक होकर संसारमें भटक गया।

सम्पन्न

लेखककी अन्य प्रकाशित रचनाएँ

हिन्दी	मूल्य	प्राप्तिस्थान
१. सच्चा धन	३७ न. पै.	श्री जैन श्वे. ते. सभा, मालेर-कोटला (पञ्जाब)
२ प्रश्न-प्रकाश	७५ न पै.	श्री जैन श्वे. ते. महासभा, ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता १
३ चमकते चाँद	३० न. पै.	
४. ज्ञान-प्रकाश	१.०० रु०	श्री जैन श्वे. ते. सभा भीनासर (राजस्थान)
५ ज्ञानके गीत	७५ न. पै.	
६. एक आदर्श-आत्मा	२५ न पै	श्री मदनचद-मपतराय बोरड दुकान न० ४०, धानमण्डी श्रीगगानगर (राजस्थान)
७ सोलह सतियां	२ ५० रु०	
८ मनोनिग्रह के दो मार्ग	१ २५ रु०	
६ लोक प्रकाश	१ २५ रु०	श्री जैन श्वे. ते. सभा बालोतरा (राजस्थान)
१० भजनो की भेंट	७५ न पै.	
११. चौदह नियम	६ न. पै	श्री जैन श्वे. ते. सभा, गगाशहर (राजस्थान)
संस्कृत		
१२. गणिगुणगीतिनवकम्		
गुजराती		
१३ तेरापन्थ एटले शुं ?		

	मूल्य	प्राप्तिस्थान
१४ धर्म एटले शु ?	६२ न. पै.	नेमीचन्द-नगीनचन्द जवेरी चन्द्रमहल १३०, शेखमेमन स्ट्रीट, बंबई-२
१५ परीक्षक बनो !	७५ न. पै.	
उर्दू		
१६ जीवन-प्रकाश		श्री जैन श्वे ते सभा नाभा (पञ्जाब)

लेखक की अप्रकाशित रचनाएँ

संस्कृत

१ देवगुरुधर्म-द्वात्रिंशिका
२ प्रास्ताविक-श्लोकशतकम्
३ एकाह्निक-श्रीकालुशतकम्
४ श्रीकालुगुणाष्टकम्
५ श्रीकालुकल्याणमन्दिरम्
६. भाविनी
७ ऐक्यम्
८. श्री भिक्षुशब्दानुशासनलघु-वृत्तितद्धितप्रकरणम्

गुजराती

९ गुर्जरभजनपुष्पावलि
१०. गुर्जरव्याख्यानरत्नावलि

हिन्दी

११. वैदिकविचारविमर्शन
१२ संक्षिप्त-वैदिकविचारविमर्शन
१३. अवधान-विधि
१४. संस्कृत बोलनेका सरल तरीका
१५. दोहा-संदोह
१६. व्याख्यानमणिमाला
१७. व्याख्यानरत्नमञ्जूषा
१८. जैनमहाभारत आदि तीन व्याख्यान
१९ उपदेशसुमनमाला
२० उपदेशद्विपञ्चाशिका

राजस्थानी

२१. धनबावनी
२२. सवैयाशतक
२३. औपदेशिक ढालें
२४. प्रास्ताविक ढाले
२५ कथाप्रबन्ध
२६. छः बडे व्याख्यान
२७ ग्यारह छोटे व्याख्यान
२८. सावधानी री समुद्र

पञ्जाबी

२९. पञ्जाब पच्चीसी